देवगन्धर्वरम्याय राधामानविधायिने। मानमंदिर संज्ञाय नमस्ते रत्नभूमये ।।

मान मंदिर

मासिक पत्रिका

श्रीराधामानविहारिणे नमः

सितम्बर २०१६

राधाष्टमी विशेषांक

श्रीराधामानविहारिणे नमः

सम्पादकीय	1
श्रीकृष्णोन्मुख करने वाला ही सच्चा हितैषी	2
Devotion - Attained By The Mercy Of Great Saints	4
धाम महिमा	6
अनन्यता क्या है ?	8
सत्संग की महिमा	11
भगवान् भी बिकता है	12
'भक्त' भगवान् से बड़े हैं	13
कथा–कीर्तन ही जीवन का आधार	14
गौरक्षा से राष्ट्ररक्षा	16
भगवद्–शरणागति	18
कृष्णाराध्या स्वामिनी प्रगटीं, जै जै राधा रानी की	20
I'M MY ONLY FEAR YOU'RE MY ONLY SAVIOUR	26
Our Nature and Karmo Ki Gati – 1	28
प्रियाकुण्ड (बरसाना) में मानगढ़ के भक्तों द्वारा सेवा	31
श्री राधारानी वार्षिक ब्रजयात्रा – २०१६ पर्चा	32

10

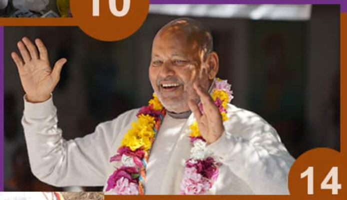
14

15

16

12

20

सम्पादकीय

भगवत्प्रीत्यर्थ किया जाने वाला कोई भी निष्काम कर्म भगवान् से जीव को मिला देता है परन्तु जीव अनादि अभ्यास के कारण वासनाओं का ही दास बना रहता है । यद्यपि वह भी जानता है कि यह देवदुर्लभ देह अनात्म व जड़पदार्थों की प्राप्ति व भोगों के लिए नहीं मिला है अपितु इसका एकमात्र उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही है । अकारण करुणावरुणालय जो सतत् जीव कल्याण के लिए कृपा की बाट जोहते रहते हैं; उनकी करुणाकातरता का ही फल है कि मनुष्य–शरीर मिल जाय और उसमें भी फिर भजनपरायण महापुरुषों का संग मिल जाय । महापुरुषों की यही साधना होती है कि वे प्रत्येक जीव को सन्मार्ग पर लगा दें क्योंकि सभी वेद, यज्ञ, दान, तपादि साधनों में श्रेष्ठ साधन यही है कि किसी एक भी जीव को भगवत्प्राप्ति का मार्ग दिखा दिया जाय ।

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ।

जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ।।

(भा. ३.७.४१)

अपनी क्रियात्मक जीवनशैली से अथवा उपदेशों से या लेखन से येन केन प्रकारेण महापुरुष सतत् प्रयत्नशील रहते हैं कि जीव भगवान् से जुड़े । इसी सन्दर्भ में ब्रज के परम विरक्त सन्त पूज्य श्री रमेश बाबा जी महाराज की अनुकम्पा से उनके उपदेशामृत को जन–जन तक पहुँचाने का मानमंदिर सेवा संस्थान ने संकल्प लिया और गुरुपूर्णिमा के पावन अवसर पर 'मान मंदिर' मासिक पत्रिका का प्रथम अंक प्रकाशित किया गया, जिसे भावुकहृदय मनीषियों ने हृदय से सराहा और प्रसन्नता व्यक्त की कि यह अद्भुत प्रकाशन निश्चय ही भवसागर में गोता लगा रहे जीवों के कल्याण का परम सुगम साधन होगा । राधाजन्माष्टमी के पुनीत अवसर पर पत्रिका का दूसरा पुष्प समर्पित करते हुए हर्ष हो रहा है कि इसके माध्यम से निश्चय ही राधारानी की कृपा मिलेगी व नियमित प्रकाशित मासिक पत्रिका 'मान मंदिर' लोकपावनी होगी, इसी आशा से ....

धनि वृषभानु धन्य बरसानौं, धनि राधा की माइ ।
तहाँ प्रगटी नवनागरि खेलत, रति सौं रति पछिताइ ।।
जाके परस सरस वृंदावन, बरषत सुखनि अघाइ ।
ताके सरन रहत काको डरु, कहत व्यास समुझाइ ।।

संरक्षक

श्रीराधामानविहारी लाल

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान अनेकानेक सत्कार्यों का संचालन प्रभु की प्रियता व लोक कल्याण की भावना से निःशुल्क कर रहा है, उसी तरह 'मान मंदिर' पत्रिका का भी कोई शुल्क नहीं रखा गया है। श्रद्धानुसार भावार्पित तुलसीदल भी ग्राह्य है अर्थात् स्वेच्छानुदान स्वीकृत है।

प्रकाशक

श्री मान मंदिर सेवा संस्थान
गहवरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)
Website : www.maanmandir.org
E-mail : ms@maanmandir.org, magazine@maanmandir.org
Tel. : +91-9927338666, 9837679558, 9927194000, 7451043271

श्रीकृष्णोन्मुख करने वाला ही सच्चा हितैषी

परम श्रद्धेय श्री रमेश बाबा जी महाराज

एक बड़े धनवान व्यक्ति हमारे पास आये और बोले कि हम अब निश्चिन्त हैं । हमने कहा क्यों? बोले – हमारे चार लड़के थे, हमने चारों की कोठी बना दी, अब इनमें आपस में झगड़ा नहीं होगा । हमने कुछ नहीं कहा लेकिन विचार किया अरे, तुमने कोठी बना दी, ये तो और उनको राग दे दिया कि कोठी को सँभालो और संसार में आसक्त रहो, अगर तुम उनके राग को हटाकर भगवान् के भजन में उन्हें लगा देते तब सच्चे पिता थे, अब तुम सच्चे पिता नहीं बल्कि शत्रु हो क्योंकि उनको तुमने संसार में और फँसा दिया ।

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या–
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ।।

(भा. ५.५.१८)

जो राग से दूर होना नहीं सिखाता है – वह गुरु, गुरु नहीं है। वह स्वजन, स्वजन नहीं है। वह पिता, पिता नहीं है। वह माँ, माँ नहीं है। वह पति, पति नहीं है। पति अपनी स्त्री के लिए गहना लाता है, स्त्री समझती है कि हमसे बड़ा प्यार करता है, ये प्यार नहीं है बल्कि वह तुम्हारी आँख फोड़ रहा है साड़ी, गहना आदि लाकर ।

पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा
मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ।
इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्
न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ।
कं योजयन्मनुजोर्थं लभेत
निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ।।

(भा. ५.५.१५)

स्त्री समझती है हमारे पतिदेव हमसे बड़ा प्यार करते हैं– सोने की नथ लाते हैं, सोने का हार लाते हैं, वे तो देवता समान हैं, हमसे बड़ा प्यार करते हैं और पति देवता ने अपनी बहू की आँख फोड़ दी । तुलसीदास जी ने लिखा है –

ग्यान बिराग नयन उरगारी ।।

ये दो आँखें हैं, एक ज्ञान और एक वैराग्य । किसी को अच्छा भोजन दे दो, अच्छे कपड़े दे दो, पैसा दे दो, तो सोचता है – 'ओहो! हमसे बड़ा प्रेम करता है ।' ये प्रेम नहीं है बल्कि तुम्हारी आँख फोड़ दिया उसने । ज्ञान, वैराग्य ये दो आँखें हैं परन्तु कोई भी माँ–बाप अपने बच्चों को वैराग्य नहीं सिखाते हैं। कोई भी पति 'स्त्री' को विराग नहीं सिखाता है, अतः वे हमारे सच्चे हितैषी नहीं बल्कि हमारे शत्रु हैं क्योंकि वे धन–संपत्ति, कपड़े–गहने आदि देकर हमारे राग का और अधिक पोषण कर रहे हैं ।

एक व्यक्ति थे, वह अपने मित्र से मिलने गए । जब मित्र के घर पहुँचे तो उन्होंने नीचे से आवाज दी, वह आया उतर के ऊपर से तो सबसे पहले एक कमरा पड़ा, उसमें बहुत–सी चप्पलें थीं तो उसने अपने मित्र से पूछा – 'भैया! कोई जूता की दुकान तूने खोल ली है क्या?' वह बोला – 'क्यों?' अरे, इतनी चप्पल रखी हैं यहाँ, इसलिए हमने पूछा । तब उसने बताया – 'भाई! ये तेरी भाभी की चप्पलें हैं ।' अच्छा, इतनी चप्पल कैसे? शरीर तो एक ही है । वह बोला – 'जब हरी साड़ी होगी तो हरी चप्पल होती है, लाल साड़ी होगी तो लाल चप्पल होती है, इसी तरह जिस रंग की साड़ी होगी उसी रंग की चप्पल होती है ।'

अब वह स्त्री समझ रही है कि पति हमसे बड़ा प्यार करता है । साड़ी, चप्पल, हार आदि सब लाकर देता है जबकि पति आँख फोड़ रहा है और आँख फोड़कर ऐसे गड्ढे में डाल रहा है, पचास रंग की साड़ी, पचास रंग की चप्पल लाकर, इससे अब उसका जन्म भर पेट नहीं भरेगा और इन कामनाओं के गड्ढे में पड़ी रहेगी, अब उस गड्ढे से वह कभी नहीं निकल पायेगी । इसी तरह ये माँ–बाप आँख फोड़ते हैं बच्चों की और समझते हैं कि हम अपने बच्चे से बड़ा प्यार कर रहे हैं । कहते हैं – 'पचास लाख रुपया हमने छोड़ दिया बैंक ऐकाउंट में बच्चों के लिए ।' अरे, इससे तो तुमने बच्चों की आँख फोड़कर और ज्यादा गड्ढे में डाल दिया और बनते हो हितैषी ।

अरे, सच्चा हितैषी तो वह है –

तात ऋषभ सौ होय, मात मंदालस मानौं ।
पुत्र कपिल सौ मिलै, मित्र प्रहलादहि जानौं ।।
भ्राता विदुर दयालु, जोषिता द्रुपद–दुलारी ।
गुरु नारद सौ मिलै, अकिंचन पर–उपकारी ।।
भर्ता नृप अंवरीष सौ, राजा पृथु सौ जो मिलै ।
भगवत भवनिधि उद्धरै, चिदानंद रस झिलमिलै ।।

पिता ऋषभदेव जैसा होना चाहिए, उनके सौ पुत्र थे और उन्होंने सभी को अध्यात्म में मोड़ दिया, सबको भगवान् के पास पहुँचा दिया, ऐसा पिता होना चाहिए, पिता वह नहीं है जो धन–संपत्ति देकर आँख फोड़ रहा है । इसी तरह माँ मंदालसा जैसी होनी चाहिए, उसकी प्रतिज्ञा थी कि मेरी कोख में जो बच्चा आया है वह फिर किसी स्त्री के कोख में नहीं जाएगा, अर्थात् वह इसी जन्म में मुक्त हो जायेगा, इसलिए माँ ऐसी होनी चाहिए। पुत्र कपिलदेव जैसा होना चाहिए, उन्होंने अपनी माँ देवहूति को उपदेश देकर भवसागर से मुक्त कर दिया । मित्र प्रह्लाद जैसा होना चाहिए, जिसने सभी असुर बालकों से कहा कि यह आसुरी विद्या नहीं पढ़ो, यह जितनी भी संसारी पढ़ाई है अंग्रेजी, गणित आदि ये सब आसुरी विद्या है, सच्ची पढ़ाई है भगवान् का गुणगान करना –

पढ़ौ भाइ, राम–मुकुंद–मुरारि।
चरन–कमल मन सनमुख राखौ, कहूँ न आवै हारि।।
कहै प्रहलाद, सुनौ रे बालक, लीजै जनम सुधारि ।
को है हिरनकसिप अभिमानी, तुम्हैं सकै जो मारि ।।
जनि डरपौ जड़मति काहू सौं, भक्ति करौ इकसारि ।
राखनहार अहै कोउ औरै, स्याम धरै भुज चारि ।।

इसी तरह भाई विदुरजी जैसा होना चाहिए, उन्होंने अन्धे धृतराष्ट्र को कह दिया था कि घर छोड़ दो, सब सहारे छोड़ दो और वहाँ जाकर मरो जहाँ कोई पानी देने वाला भी न हो, विदुरजी ने यह भी नहीं सोचा कि बेचारे अन्धे हैं, कहाँ जाएँगे? धृतराष्ट्र ने उनकी बात मान ली और चले गए गृहासक्ति छोड़कर भजन करने, तो इतने से ही उन्होंने जो अनन्त पाप किये थे, निरपराध पाण्डवों को कष्ट दिया था, वह सब पाप नष्ट हो गए। इसी तरह और भी बहुत से उदाहरण हैं ।

इसलिए हमारा सच्चा हितैषी वह है जो वैराग्य (संसार से राग छोड़ने) की शिक्षा दे और जो राग सिखाता है, वह चाहे माँ है, बाप है, पति है, गुरु है, वे सब हमारे शत्रु हैं, हमारी आँखें फोड़कर ऐसे गड्ढे में डाल रहे हैं, जहाँ से अनन्त जन्मों तक हम नहीं निकल पायेंगे ।

राधे-श्याम रटो उमरिया थोरी है ॥

नाव भँवर में फँसती जावै ।
रात भयानक चढ़ती आवै ।
निंदिया छोड़ उठो उमरिया थोरी है ॥
आयु रात-दिन घटती जावै ।
आशा-तृष्णा बढ़ती जावै ।
जग से दूर हटो उमरिया थोरी है ॥
झूठे जग में मन भरमावै ।
हीरा जैसा जनम गँवावै ।
कृष्ण-चरण पकड़ो उमरिया थोरी है ॥

Devotion - Attained By The Mercy Of Great Saints

H.H. RAMESH BABAJI MAHARAJA

Many days ago, Shri Ramesh Baba Ji Maharaj spoke on the topic of Saint Kabir dāsa Ji, because an incident similar to what happened to him happened at Maan Mandir.

rahūgaṇaitat tapasā na yāti
na cejyayā nirvapaṇād gṛhād vā
na cchandasā naiva jalāgni-sūryair
vinā mahat-pāda-rajo-'bhiṣekam

Bh. 5.12.12.

My dear King Rahūgaṇa, unless one has the opportunity to smear his entire body with the dust of the lotus feet of great devotees, one cannot realize the Absolute Truth. One cannot realize the Absolute Truth simply by observing celibacy [brahmacarya], strictly following the rules and regulations of householder life, leaving home as a vānaprastha, accepting sannyāsa, or undergoing severe penances in winter by keeping oneself submerged in water or surrounding oneself in summer by fire and the scorching heat of the sun. There are many other processes to understand the Absolute Truth, but the Absolute Truth is only revealed to one who has attained the mercy of a great devotee.

Saint Kabir dāsa Ji was a maha-puruṣa, a great devotee of the Lord, a perfected soul, whereas I am an ordinary living entity. I don't have any perfection or realization. I am walking towards the Lord with my eyes closed. It is said, that one can proceed on this path of bhakti only by closing the eyes. We cannot see the Absolute truth with these eyes.

In front of us is a world, which is false. The truth is only the Lord who is present everywhere but cannot be percieved. How can then we proceed towards something that we cannot see? Lord Brahmā in his prayers to the Lord Śrī Kṛṣṇa said:

tvam bhav-yoga-paribhavita-hrt-saroja
asse sruteksita-patho nanu natha pumsam
yad-yad-dhiya ta urugaya vibhavayanti
tat-tad-vapuh pranayase sad-anugrahaya

Bh. 3.9.11.

O my Lord, Your devotees can see You through the ears by the process of bona fide hearing, and thus their hearts become cleansed, and You take Your seat there. You are so merciful to Your devotees that You manifest Yourself in the particular eternal form of transcendence in which they always think of You.

Here in this verse it is particularly mentioned: tvaṁ bhāv-yoga-paribhāvita. This indicates the efficiency achieved through execution of matured devotional service, or prema, love of Godhead. This state of prema is achieved by the gradual process of development from faith to love. On faith one associates with bona fide devotees, and by such association one can become engaged in bona fide devotional service, this is also confirmed in Bhagavad-gītā (4.11): ye yathā māṁ prapadyante tāṁs tathaiva bhajāmy aham. Kṛṣṇa rewards all the devotees equally, according to their different intensities of love for Him. In the material world, the same reciprocations of feelings are there, and they are equally exchanged by the Lord with the different types of worshipers. The pure devotees both here and in the transcendental abode associate with Him in person and are able to render personal service to the Lord and thus derive transcendental bliss in His loving service.

The Lord is present. Although, He is not seen but we have trust that the Lord exists. When the heart is filled with love for the Lord, then the Lord makes His appearance in such a purified heart. And how does the heart become filled with devotion? This, Devotion to Lord, Śrī Kṛṣṇa in the form of hearing and chanting His glories is obtained through the association of Saints.

A Saint is not simply one who changes the cloth to white or saffron. A Saint is someone whose heart is full devotion for the Lord. In turn, through association of such a bhakta, devotee of Lord Śrī Kṛṣṇa, one can attain true devotion unto the Lord and not just merely through the performance of austerities and penances etc.

In the beginning verse, Jada Bhārataji is explaining to King Rahugana that neither by performance of austerities, great sacrifices, giving of charity can one obtain the loving association and service of Śrī Bhāgavan. Nor, by followingthe household principles recommended in the śastra like being loyal to one's wife or chaste to the husband, can one obtain the Lord.

First of all, the householder principles and austerities recommended in the śastra are difficult to follow in Kali-yuga. Chhanda means the vedas. Even by studying the Vedas, the Lord cannot be obtained. Worshiping water means taking bath in Holy waters. Worshiping fire means the performance of sacrifice. Worship of the sun is the chanting of the Gāyatrī mantra. None of these processes by themselves are sufficient enough to award pure devotional mentality necessary to attain the association of the Lord.

Then, how can the Lord be obtained? vina mahat-pada-rajo-bhisekam Never without having meared oneself with the dust from the lotus feet of Great Vasnavas. But, by the association of a great saint, a maha-puruṣa. Approach him and bathe in the dust of his feet. This means by taking shelter of him and by taking to heart his instructions.

As there is the shelter of the Lord, in the same way there is the shelter of devotees. The difference is that the Lord is not seen but the devotee can be seen. So, how one may identify such a saint, a maha-puruṣa? Is it someone who has matted locks of hair, or one who performs great austerities, should he be a householder, a vānaprastha or a sannyāsī? How can it be known that he is a great soul, a great saint?

The real identification of a great Saint is only through one quality. It is not dependent on whether one is a householder or sannyāsī, neither on the performance of austerities, nor on the scholarly study of the Vedas. The great saint is one who has personally experienced and realized the Absolute Truth, the real substance. That substance is far from the Vedas and rare to be found in all religions, but one who has discovered and realized that, is a great Saint.

Kabir dāsaji did not receive any formal education. He was an illiterate. He stated that he never touched pen and paper. He mentioned this in his composition, 'I never touched pen or ink in my whole life.' Kabir dāsaji did not go to any school to learn reading and writing. But he is recognized as a great saint, a maha-puruṣa.

He stated, 'You speak the information that you have studied in the book, but I explain what I have seen with my own eyes and realized.'

The self-realized brāhmaṇa Jaḍa Bharata describes the symptoms of pure devotees:

yatrottamasloka-gunanuvadah
prastuyate gramya-katha-vighatah
nisevyamano nudinam mumuksor
matim satiim yacchati vasudeve

Bh. 5.12.13

Who are the pure devotees mentioned here? In an assembly of pure devotees, there is no question of discussing material subjects like politics and sociology. In an assembly of pure devotees, there is discussion only of the qualities, forms and pastimes of the Supreme Personality of Godhead. He is praised and worshiped with full attention. In the association of pure devotees, by constantly hearing such topics respectfully, even a person who wants to merge into the existence of the Absolute Truth abandons this idea and gradually becomes attached to the service of Vāsudeva.

The symptoms of pure devotees are described in this verse. The pure devotee is never interested in material topics. Śrī Caitanya Mahāprabhu has strictly prohibited His devotees to talk about worldly matters. Grāmya-vārtā nā kahibe: one should not indulge in talking unnecessarily about news of the material world. One should not waste time in this way. This is a very important feature in the life of a devotee. A devotee has no other ambition than to serve Kṛṣṇa, the Supreme Personality of Godhead. Uttamaśloka is a name of the Lord. Śloka means glory. Uttama means exalted. So the Lord has the topmost glories. That is the Lord. Wherever the glory of the Lord is sung, that is the assembly of pure devotees.

'Where do you live? Where have you come from?' There are no mundane discussions. All over the world we find this grāmya-kathā, mundane gossip: Mother, father, wife, husband, brother, sister, son; wherever they sit they discuss mundane topics. This is called grāmya-kathā.

prastuyate gramya-katha-vighatah

Never take part in materialistic discussions and do nothing else; neither austerity, so called religious practices, vānaprastha, nor sannyāsā will do. Śrīmad Bhāgavatam rejects all this. Simply hear Kṛṣṇa-kathā. Go wherever the glory of the Lord is sung and avoid materialistic talks.

Yes, this will make your life successful, just simply go on hearing Kṛṣṇa-kathā. What will this do? By simply listening to the glory of the Lord, day and night, the Lord will come and reside in your intelligence. Automatically, your intelligence will become absorbed in Śrī Bhāgavan.

This position cannot be achieved by austerity, taking bath in a holy place, or chanting the Gāyatrī mantra. Merely by practice of these sādhanas one's intelligence will not be connected with the Lord. However, one's intelligence will only be engaged in the Lord's service, when one hears Kṛṣṇa-kathā in the association of devotees, 24 hours a day. Something, that is not obtained even by millions of years of austerity. Only by living in such a situation can one obtain this great fortune. Therefore, this should definitely be done as far as possible. Every day, every moment, without any gap one should remember the Lord in the association of His dear devotees. ■

धाम महिमा

धामवास कदापि निष्फल नहीं जाता है । कल्पों के अन्तराल के उपरान्त भी इसके फल की प्राप्ति होती है, जैसे काकभुशुण्डि जी को हुई । दुर्भिक्ष के कारण एक बार ये उज्जैन चले गए । वहाँ शैवोपासना करने लगे । साथ ही विष्णुद्रोह भी करने लगे। गुरु ने समझाया भी, विपरीतमति होने के कारण गुरु में ही अभावोत्पन्न हो गया । अनन्यता की ओट में संकीर्णता का पोषण एवं गुरुद्रोह करने लगे । एक समय गुरु को प्रणाम न किया । गुरु के परमोदार हृदय ने ध्यान भी न दिया किन्तु शशांकशेखर शम्भु इस अपराध पूर्ण संकीर्णता को सह न पाए और शाप दे दिया, "जा ! तामसी योनि में चला जा, एक हजार बार और जन्म–मरण को प्राप्त कर" । शाप से कोमल हृदय गुरु को संताप हुआ एवं उन्होंने रुद्राष्टक द्वारा शिव स्तुति की, साथ ही प्रार्थना की – "हे शम्भो ! यह बेचारा जीव है, आप इस पर कृपा करें, जिससे आपका शाप इसके लिए वर बन जाए ।" गुरु की साधुता पर प्रसन्न हो कर शम्भु ने कहा – "यह सहस्र बार जन्म–मृत्यु तो निश्चित पायेगा किन्तु उसके दुःसह कष्ट से उन्मुक्त हो जाएगा । इसके अतिरिक्त किसी भी जन्म में इसकी ज्ञान हानि नहीं होगी ।"

काकभुशुण्डि से शिव वचन – "हे शूद्र ! कई कारणों से तुझे इस विशेष कृपा की प्राप्ति हुई है –

रघुपति पुरीं जन्म तब भयऊ ।
पुनि तैं मम सेवाँ मन दयऊ ।।

(रा.च.मा.उत्तर. १०९)

प्रथम तो तेरा जन्म धाम में, श्री राघवेन्द्र सरकार की पुरी में हुआ, द्वितीय तूने अपना मन मुझमें संजोया, धाम की कृपा एवं मेरी कृपा से तेरे हृदय में राम भक्ति का उदय होगा ।" शाप के सहस्र वर्ष होने ही वाले थे । चरम शरीर में लोमश जी के शाप से कौआ बन गये किन्तु शाप का कोई प्रतिकार नहीं किया तब सुप्रसन्न ऋषि ने राम मन्त्र देकर अनेकों दुर्लभ वर दिये । राम भक्ति का वर, इच्छा मृत्यु का वर, ज्ञान–वैराग्य के निधान होने का वर, जहाँ भी रहोगे, एक योजन पर्यन्त माया दूर देश में रहेगी, बिना श्रम के भगवच्चरित्र का सम्यक ज्ञान, तो इन सभी दुर्लभ वरों का मुख्य कारण धाम वास था । काकभुशुण्डि जी कहते हैं – "अब भी जब जब अवधपुरी (अवतरित) धाम में प्रभु लीला करते हैं, मैं पहुँच कर दर्शनानन्द प्राप्त करता हूँ ।"

जब जब अवधपुरीं रघुबीरा ।
धरहिं भगत हित मनुज सरीरा ।।
तब तब जाइ राम पुर रहऊँ ।
सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ ।।

(रा.च.मा.उत्तर. ११४)

यह तो रामोपासना की चर्चा थी, कृष्णोपासना में भी हम देखते हैं । 'गर्गसंहिता' गिरिराज खण्ड में विजय ब्राह्मण की चर्चा हुई । एक राक्षस जो कि पूर्व जन्म में धनाढ्य वैश्य था। कई कल्पों तक कष्ट भोगने के पश्चात गिरिराज जी की एक शिला स्पर्श से उसे भगवद्धाम की प्राप्ति हो गई । कथनाशय है कि धाम वास अमोघ है, यह कभी व्यर्थ नहीं जाता है । धाम वास का फल अवश्य मिलता है, यह अनेकों कल्पों के पश्चात् भी अपना प्रभाव दिखाता है । श्रीठाकुर जी का अवतार कृपापरवश होता है –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ।।

(भा. १०.३३.३७)

यहाँ 'तादृशी क्रीडा' से तात्पर्य है, प्रभु ऐसी लीला करते हैं, जिससे जीव तत्परता को प्राप्त हो जाए । यह रास लीला उनकी अनुग्रह लीला है । प्रभु भक्तों के लिए नाचते हैं, चोरी करते हैं, दधि दान लेते हैं, छेड़छाड़ करते हैं, भक्तों की चाकरी करते हैं । उत्तरा के घृणित गर्भ में प्रवेश करते हैं, माधव दास जैसे भक्तों की संग्रहणी में मल–मूत्र भी धोते हैं, भीलनी के जूठे बेरों को खाते हैं, ग्वालों की जूठन भी खाते हैं –

'ग्वालन कर ते कौर छुड़ावत ।
हा–हा करके मांग लेत हैं कहत मोहि अति भावत।।'

(सूरदासजी)

ये सब अनुग्रह लीलाएँ हैं । धामावतार उनकी कृपा लीला का पूरक है ।

धाम का अवतार प्रभु की इच्छा पूर्ति हेतु होता है –

चारि खानि जग जीव अपारा ।
अवध तजें तनु नहिं संसारा ।।

(रा.च.मा.बाल. ३५)

और प्रभु की इच्छा है कि जीव बिना श्रम के, बिना विलम्ब के मेरे समीप आ जाय ।

ध्रुव स्तुति के अंतर्गत प्रभु को अनुग्रह कातर कहा गया –

अप्येवमर्य भगवान् परिपाति दीनान्
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोस्मान् ।।

(भा. ४.६.१७)

यहाँ प्रभु को वाश्रा कहा गया, वाश्रा (अलब्याई गाय) अपने सद्योत्पन्न वत्स की गर्भ से आई गन्दगियों को भी रुचि पूर्वक चाटती है और उसे शुभ्र बना देती है, उसे उन गन्दगियों को चाटने में भी आनन्दानुभूति होती है ।

इसी प्रकार धाम जीव के अक्षम्य अपराधों को चाट जाता है । इस धाम ने जगज्जननी श्रीसीताजी के निन्दक नर–नारियों के अक्षम्य पाप समूहों को नष्ट कर उन्हें शोक रहित करके गोद में रखा –

प्रनवउँ पुर नर–नारि बहोरी ।
ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ।।
सिय निंदक अघ ओघ नसाए ।
लोक बिसोक बनाइ बसाए ।।

(रा.च.मा.बाल. १६)

ब्रह्मा जी के भी ग्वाल–बाल एवं वत्स–हरण के पाप को धाम की परिक्रमा ने ही नष्ट किया था । त्रिःपरिक्रम्य – ब्रह्मा जी ने ब्रज की तीन परिक्रमायें कीं । (भा. १०.१४.४१)

'ब्रज परिक्रमा करहु देह को पाप नसावहु'

(सूरदास जी)

धामी से अधिक अनुग्रह, वात्सल्य पूर्ण है यह धाम । तभी तो प्रभु श्री राम ने कहा –

जद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना ।
बेद पुरान बिदित जगु जाना ।।
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ ।
यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ ।।

(रा.च.मा.उत्तर. ४)

पुनः पुनः "वैकुण्ठाच्चपरात्पम्" इसे कहा किन्तु इसकी यह अद्भुत महिमा अतर्क्य बुद्धि से ही गम्य है, असत् तर्क धाम महिमा ज्ञान का अवरोधक है –

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ।
यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ।।

(भा. २.६.४०)

तभी तो कहा – "यह प्रसंग जानइ कोउ–कोऊ" । सात्विक श्रद्धावान ही निस्तर्क विश्वास करता है । प्रत्येक कल्प में नित्य धाम का धरा पर जब अवतरण होता है तो वह पुरी रूप हो जाता है । जैसे साकेत अवधपुरी हो गया –

राम धामदा पुरी सुहावनि ।
लोक समस्त बिदित अति पावनि ।।

(रा.च.मा.बाल. ३५)

गोलोक मधुपुरी हो गया –

'अहो मधुपुरी धन्या बैकुण्ठाच्च गरीयसी।'

(वा. पु.)

पुरी की कृपासे, पुरी के आश्रय से जीव भगवद् प्रियता प्राप्त कर लेता है ।

श्री राम वाक्य –

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी ।
मम धामदा पुरी सुख रासी ।।

(रा.च.मा.उत्तर. ४)

ये पुरियाँ नित्य धामदा हैं । धाम का अवतार केवल पापियों पर अनुग्रह करने के लिए होता है । यहाँ की पुनीत नदियों का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जल–पान ही पापों का मूलोच्छेद कर देता है –

दरस परस मज्जन अरु पाना ।
हरइ पाप कह बेद पुराना ।।

भगवती सरस्वती भी इस महिमा का स्वल्प सा वर्णन नहीं कर सकती हैं, फिर अन्य देव–नरों की तो चर्चा ही क्या?

नदी पुनीत अमित महिमा अति ।
कहि न सकइ सारदा बिमल मति ।। ■

(रा.च.मा.बाल. ३५)

अनन्यता क्या है ?

ब्रजबालिका साध्वी मुरलिका देवी

मन की एकनिष्ठ वृत्ति का नाम है 'अनन्यता' । बाह्य क्रियाओं को सीमित करना अनन्यता नहीं है ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

(गी. ९.२२)

मन से अनन्य चिन्तन ही अनन्यता है ।

अतः भगवान ने कहा –

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।

(गी. १२.८)

मन मुझको दे दो फिर सभी क्रिया अनन्यता की होगी । मन देने का अभिप्राय मन की सभी वृत्तियों से है ।

एकादशासन्मनसो हि वृत्तय
आकूतयः पञ्च धियोभिमानः ।
मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां
वदन्ति हैकादश वीर भूमीः ।।
गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि
विसर्गरत्यर्त्यभि जल्पशिल्याः ।
एकादशं स्वीकरणं ममेति
शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ।।

(भा. ५.११.९,१०)

मन की ग्यारह वृत्तियाँ हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक अहंकार । ये मन की ग्यारह वृत्तियाँ हैं । वृत्ति अर्थात् बरतना, इस प्रकार ग्यारह तरह से मन बर्तता है । सभी वृत्तियों का जहाँ पर्यवसान है, वह है – अहम् । इन ग्यारह वृत्तियों की ग्यारह आधार भूमियाँ हैं, जहाँ ये वृत्तियाँ खड़ी होती हैं । शब्द, स्पर्श, रस, रूप व गन्ध – ज्ञानेन्द्रिय के विषय हैं । मलत्याग, सम्भोग, गमन, भाषण, लेना–देना – ये कर्मेन्द्रिय के विषय हैं । शरीर को 'यह मेरा है' कहकर स्वीकार करना – अहंकार का विषय है । कुछ लोग अहंकार को मन की बारहवीं वृत्ति और उसके आश्रय शरीर को बाहरवाँ विषय भी मानते हैं ।

अतः मन का अनन्य चिन्तन ही अनन्यता है ।

श्री हिताचार्य जी की वाणी में –

यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि कौने सचु पायौ।
जहाँ–तहाँ बिपति जार जुबती लौं प्रगट पिंगला गायौ।।
द्वै तुरंग पर जोर चढ़त हठ परत कौन पै धायौ।
कहि धौं कौन अंक पर राखै जो गनिका सुत जायौ।।
जै श्रीहितहरिवंश प्रपंच बंच सब काल ब्याल कौ खायौ।
यह जिय जानि श्यामश्यामा पदकमल संगी सिर नायौ।।

मन एक ही स्थान पर हो, मन का जगह–जगह भटकना व्यभिचार है । अव्यभिचारिणी भक्ति ही अनन्य भक्ति है ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ।।

(गी १४.२६)

एक इन्द्रिय को संयमित कर बाकी वृत्तियों से उपभोग करना व्यभिचार है । स्वर्ण व पीतल, दोनों का पीलापन देखने में बहुत समान होता है । किन्तु क्या समानता हो सकती है ? इसी प्रकार अनन्यता – संकीर्णता को समझें।

श्री भगवान् का मत –

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।

(गी. ७.१९)

पुनः

सीय राममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।

(रा.च.मा.बाल. ८)

सर्वत्र अपने इष्ट को देखना ही अनन्यता है । यदा–कदा अपवाद भी दिखाई पड़ता है परन्तु यह उनके भाव की विशेष स्थिति है, क्योंकि वे अन्यत्र अभाव नहीं रखते। अन्यत्र अभाव हो जाना ही संकीर्णता है ।

यथा – श्री हरिराम व्यास जी महाराज का श्री कबीरदास जी के प्रति कुछ अभाव हुआ और भगवद्दर्शन बन्द हो गया।

अतः संकीर्णता से बचें क्योंकि यह अपराध मार्ग है । भगवद्धाम से भी पतन हो जाएगा ।

यह अपराध परम पद हू ते उतरि नरक में परिबो ।।
हरि भक्तन सों गरब न करिबो ।

जय–विजय ने जब सनकादिक मुनियों का अपराध किया तो उन्हें नित्यधाम से नीचे आना पड़ा ।

तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः
कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या
पापीयसस्त्रय इमे रिपवोस्य यत्र ।।

(भा. ३.१५.३४)

सनकादिक मुनि बोले – भगवान् के पार्षद होकर भी मन्द धी बने हुए हो । अतः तुम्हारे कल्याणार्थ इस अपराध के योग्य हम तुम्हें दण्ड दे रहे हैं । उन पापयोनियों में जाओ – जहाँ जीव को काम, क्रोध, लोभ घेरे हुए हैं । अर्थात् अभावदृष्टि का परिणाम है– काम, क्रोध, लोभादि विकारों का आना ।

बिना अपराध के विकार नहीं आते हैं ।

अपने इष्ट में भाव एवं अन्यत्र अभाव, यह अपराध है ।

अन्याश्रय से भी अनन्यता नष्ट हो जाती है ।

जो कोउ प्रभु कें आश्रय आवै ।
सो अन्याश्रय सब छिटकावै ।।

(महावाणी)

अन्याश्रय क्या है ?

अपने मन, बुद्धि, इन्द्रियादि का आश्रय भी अन्याश्रय है । गजराज व द्रोपदी में जब तक अन्याश्रय रहा, भगवान् नहीं आये ।

जब लगि गजबल अपनो बरत्यो नेंक सर्यो नहिं काम ।
निरबल ह्वै बलराम पुकार्यो आये आधे नाम ।।
द्रुपद सुता निरबल भई ता दिन तजि आये निजधाम ।
दुस्सासन की भुजा थकित भई वसन रूप भये स्याम ।।

नामदेव जी की वाणी में –

भाई बन्धु सबन सों तोरे बैठिया आपुहि आवै ।

नारद जी की वाणी में –

अन्याश्रयाणां त्यागो अनन्यता ।

(ना.भ.सू. १०)

कर्म सात प्रकार से होता है ।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत् ।।

(भा. ११.२.३६)

शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार एवं स्वभाव से कर्म प्रभु के आश्रित ही होने चाहिए। यहाँ तक कि गोस्वामी जी ने कहा –

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी ।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ।।

(रा.च.मा.अयो. १३०)

पुनः

चलत सोवत सुपन जागत छिन न इत उत जात ।।
नाहिन रह्यो मन में ठौर ।

हे प्रभो ! जाग्रत में स्थूल शरीर से एवं स्वप्न में सूक्ष्म शरीर से भी आपकी ही शरण में मैं हूँ । जाग्रत व स्वप्न की ही बात नहीं है, सुषुप्ति में भी कर्म होता है । जीव आनन्द का अनुभव करता है। सुषुप्ति, जिसे हम गाढ़ निद्रा कहते हैं; यदि सुषुप्ति न हो तो आदमी पागल हो जाये । सुषुप्ति में जीव का प्रभु से सावरण मिलन होता है एवं समाधि में निरावरण मिलन होता है । समाधि में तमोगुण भी नहीं रहता है, वृत्तियाँ एक जगह सत्त्व में स्थित हो जाती हैं ।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु स्फुरतु मे राधापदाब्जच्छटा
वैकुण्ठे नरकेथवा मम गतिर्नान्यास्तु राधां विना ।
राधाकेलिकथा सुधाम्बुधिमहावीचिभिरान्दोलितं
कालिन्दीतटकुञ्जमन्दिरवरालिन्दे मनो विन्दतु ।।

(रा.सु.नि. १६४)

सुधानिधिकार कहते हैं – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्था में प्रभु की शरणागति रहे, यही अनन्यता है ।

यदि श्रीराधारानी का आश्रय है तो फिर वैकुण्ठ में रहें या नरक में, क्या प्रभाव पड़ता है ?

'सरगु नरकु अपबरगु समाना ।'

(रा.च.मा.अयो. १३१)

अनन्याश्रित का नरक भी क्या बिगाड़ेगा ?

यत्र यत्र मम जन्मकर्मभिर्नारकेथ परमे पदेथ वा ।
राधिकारतिनिकुञ्जमण्डली तत्र तत्र हृदि मे विराजताम् ।।

(रा.सु.नि. २६७)

वैकुण्ठ में जन्म हो अथवा नरक में, भक्त प्रभावित नहीं होता है ।

कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ता–
च्चेतोलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ।
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेङ्घ्रिशोभाः
पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ।।

(भा. ३.१५.४९)

अतः सनकादिक ने कहा–प्रभो !हमारा चित्त आपके चरणकमलों का भ्रमर बना रहे, वाणी से आपकी चर्चा हो, कान भी आपके सुयश से परिपूर्ण रहें फिर भले पाप नरक में भी ले जाते हैं तो कैसी चिन्ता?

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ।।

(भा. ६.१७.२८)

भगवद्–शरणागतों को नरक से कैसा भय ? उनके लिए तो स्वर्ग, मोक्ष, नरक सब भगवद्–रुप ही हैं । ■

भगवत्प्राप्ति का सरल व सुलभ मार्ग

सत्संग

श्री रमेश बाबा जी महाराज द्वारा विगत ६२ वर्षों से सतत् मान मंदिर में सत्संग अनवरत गति से ब्रजवासियों तथा विश्व के अनगिनत प्राणियों में भक्ति का संचार कर रहा है । बाबा महाराज की अमृतमयी वाणी का रसास्वादन करने के लिए हजारों की संख्या में भक्तगण आते हैं और सत्संग पाकर अपने जीवन को कृतार्थ करते हैं ।

सत्संग का समय – प्रातः 8:30 से 9:30

सत्संग की महिमा

सत्संग की महिमा का गान करते हुए श्रीवेदव्यास जी महाराज श्रीमद्भागवत में लिखते हैं –

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन
सत्संगमं च लभते पुरुषो यदा वै ।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकार–
नाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ।।

(भा.माहा. २.७६)

"अनन्तानन्त जन्मों के संचित पुण्यपुञ्ज का जब उदय होता है तब सत्संग की प्राप्ति होती है और सत्संग से ही विवेक का उदय होता है तथा अज्ञानजनित मोह, मद रूप अंधकार का नाश होता है ।"

दुष्ट भी सत्संग पाकर सुधर जाते हैं –

एक बार श्री नारद जी महाराज जंगल से होकर कहीं जा रहे थे तो रास्ते में रत्नाकर डाकू ने उनको रोक लिया और वह बोला – "तुम्हारे पास जो भी है, उसे निकालो नहीं तो मारे जाओगे ।"

नारद जी – तुम जो पाप करके यह धन अर्जित करते हो, यह किसके लिए करते हो ।

रत्नाकर डाकू – अपने परिवार वालों के लिए ।

नारद जी – "तुम एक बार जाकर अपने परिवार वालों से पूछकर तो आओ कि मैं निरपराध लोगों को मारकर तुम लोगों के पालन–पोषण के लिए धन लाता हूँ । क्या मेरे द्वारा किये उस पाप में तुम सब भी बराबर भागीदार बनोगे ?"

वह घर के सदस्यों से पूछने गया तो सब लोगों ने मना कर दिया। तब वह आकर नारद जी के चरणों में गिर पड़ा, तत्पश्चात् नारद जी ने उसे राम–नाम की दीक्षा दी और आगे चलकर इनका नाम वाल्मीक पड़ा । इन्होंने ही 'वाल्मीक रामायण' की रचना की ।

अतएव एक क्षण के साधु–संग ने उन्हें कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया ।

इसलिए केवल सत्संग ही एकमात्र भगवान् से मिलने का सच्चा साधन है ।

सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः ।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ।।

(भा. ११.१२.३)

सत्संग से ही दैत्य, राक्षस, हिरण, पशु–पक्षी, गन्धर्व–अप्सराओं आदि ने भी भगवत्प्राप्ति की ।

श्रीरामचरित मानस जी में गोसाईं तुलसीदास जी ने डंके की चोट पर घोषणा की है कि –

मति कीरति गति भूति भलाई ।
जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ।।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ।।

(रा.च.मा.बाल. ३)

"आज तक जिस किसी को जो भी गति मिली, मति मिली, कीर्ति मिली या जो कुछ भी मिला वह केवल सत्संग से ही मिला है । इनकी प्राप्ति का सत्संग के अलावा न लोक में कोई उपाय है, न वेद में ।"

इसलिए शिव जी ने कहा है –

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ।।

(रा.च.मा.उत्तर. १२५)

"हे पार्वती ! संत समागम के समान दुनिया में कोई लाभ न था, न है और न होगा । किन्तु बिना भगवान् की कृपा के सत्संग नहीं मिलता है और बिना सत्संग के भक्ति नहीं मिलती है ।"

भगवान् राम ने कहा था –

भगति तात अनुपम सुखमूला ।
मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ।।

(रा.च.मा.अरण्य. १६)

पुनः

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी ।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।।

(रा.च.मा.उत्तर. ४५)

"भक्ति अनन्त सुख देती है परन्तु तभी मिलती है, जब कोई अनुकूल संत मिल जाएँ ।"

सब कर फल हरि भगति सुहाई ।
सो बिनु संत न काहू पाई ।।
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा ।
राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ।।

(रा.च.मा.उत्तर. १२०)

"प्रभु की भक्ति सभी साधनों का फल है लेकिन बिना संतों के संग के नहीं मिलती है । इसलिए जो सत्संग करते हैं, उन्हें भक्ति की प्राप्ति सुलभ है ।"

मीराबाई से राणा जी ने कहा था कि "तू सन्तों का संग करना छोड़ दे नहीं तो मारी जायेगी ।" उन्होंने कहा कि "मैं जहर पीकर मरना अच्छा समझती हूँ, लेकिन साधु–संग नहीं छोड़ सकती हूँ ।"

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ ।
साधु – संगति कर हरि सुख लीजै, जग सूँ दूर रहूँ ।।

ऐसा प्रेम होना चाहिए सत्संग के प्रति ।

भगवान भी बिकता है

मीराबाई ने कहा है –

माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल ।
कोई कहै हलको कोई कहै भारो,
लियो री तराजू तोल ।।

मैंने कृष्ण को खरीद लिया ।

क्या भगवान् भी बिकता है?

हाँ, भगवान् भी बिकता है ।

स्वयं भगवान् ने कहा है –

तुलसीदल मात्रेण जलस्य चुल्लुकेन वा ।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ।।

"मैं एक तुलसीदल, एक चुल्लू पानी पर भक्तों के हाथों बिक जाता हूँ । हमें कोई भी खरीद ले ।"

ऐसा जो सर्वशक्तिमान है उसको खरीद लेता है भक्त; अपना सब कुछ समर्पण कर दो और भगवान् को खरीद लो । लेकिन दुर्भाग्य है हम जैसे लोग लड्डू–कचौड़ी, रुपया–पैसा, भोग में बिक जाते हैं । जो लड्डू–कचौड़ी में, मल–मूत्र में बिक गया वो भगवान् को क्या खरीदेगा? भगवान् को तो वही खरीद सकता है जिसने यह मान लिया कि यह अनन्त धन–सम्पत्ति सब कृष्ण की है, पर हम जैसे तो नोटों का बण्डल बाँधते हैं, भगवान् को क्या खरीदेंगे । हम तो नोटों–भोगों में खुद बिक गए । खुद अठन्नी–चवन्नी दास बन गए ।

नामदेव जी ने लिखा है –

'बैठिया प्रीति मजूरी माँगे, जो कोउ छानि छबावै ।
भाई बंधु सगे सों तोरै, बैठिया आपुहि आवै ।।

कोई भी उससे अपना काम करा ले, लेकिन उसकी मजूरी है 'प्रीति' (प्रेम) ।

स्वयं भगवान् ने कहा है, हमको खरीदने के लिए सबसे सम्बन्ध तोड़ने पड़ेंगे ।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ।।

(भा. ९.४.६५)

'दारा' स्त्री से, 'अगार' मकान, जमीन–जायदाद से, 'पुत्र' बेटा–बेटी से, 'आप्त' माता–पिता, बन्धु–बान्धवों से, 'प्राण' प्राणों से, 'वित्त' धन से, 'इमम्' इस लोक के भोगों से, 'परम्' परलोक के भोगों से मन को हटालो और केवल ममता हममें रखो ।

जननी जनक बंधु सुत दारा ।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ।
सब कै ममता ताग बटोरी ।
मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ।।

(रा.च.मा.सुन्दर. ४८)

चाहे माँ है, चाहे बाप है, बेटा है, बेटी है, स्त्री है, कोई भी सगा–सम्बन्धी है, अगर ममता कहीं भी रहेगी तो तुम भगवान् को नहीं खरीद पाओगे । हिम्मत करके सब सौंप दो और खरीद लो भगवान् को । मीरा ने सब कुछ छोड़ा तब उन्होंने भगवान् को खरीदा और चाहे जैसे नचाया ।

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई ।
तात–मात–भ्रात–बन्धु, आपनो न कोई ।।

'भक्त' भगवान् से बड़े हैं

किसी भक्त में भावना करना भगवान् की भक्ति से भी बड़ा है । भगवान् ने भागवत में कहा भी है कि हमारे भक्त की पूजा हमारी पूजा से बड़ी है –

'मद्भक्तपूजाभ्यधिका'

(भा. ११.१९.२१)

तुलसीदास जी ने भी यही कहा है –

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा ।
राम ते अधिक राम कर दासा ।।

(रा.च.मा.उत्तर. १२०)

लेकिन यह बात जीवन में आ नहीं पाती है ।

आदिपुराण में भगवान् ने कहा है –

ये मे भक्तजनाः पार्थ! न मे भक्ताश्च ते जनाः ।
मद्भक्ताश्च ये भक्ता मम भक्तास्तु ते नराः ।।

जो हमारी भक्ति करते हैं, वे भक्त नहीं हैं, जो हमारे भक्तों की भक्ति करते हैं, वही मेरे असली भक्त हैं ।

भक्त का शरीर भी पांचभौतिक होता है, उसमें शरीरगत विकार दिखाई पड़ते हैं, कहीं कोई भक्त बीमार है, कोई गरीब है, ऐसी स्थिति में भी उनमें दोष देखते हुए भी प्राकृत बुद्धि न आये, यही है उपासना ।

षष्टिवर्ष सहस्त्राणि विष्णोराराधनं फलम् ।
सकृद वैष्णव पूजायां लभते नात्र संशयः ।।

साठ हजार वर्ष तक तुमने भगवान् की पूजा की, उससे तुम्हें जो फल मिलेगा, वह भक्त की एक बार पूजा करने से मिल जाता है

वराह पुराण में भगवान् ने कहा है –

मद्वन्दनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु वन्दनम् ।
मत्कीर्तनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु कीर्तनम् ।।
मत्सेवनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु सेवनम् ।
मद्भोजनाच्छत गुणं मद्भक्तस्य तु भोजनम् ।।

हमारी वन्दना से सौ गुना बड़ी है हमारे भक्त की वन्दना । हमारे कीर्तन से सौ गुना बड़ा है हमारे भक्त का कीर्तन करना । हमारी सेवा से सौ गुना बड़ी है, हमारे भक्त की सेवा करना । हमको छप्पन भोग लगाने से सौ गुना बड़ा है, हमारे भक्त को भोजन पवाना ।

गरुण पुराण में भी कहा गया है –

सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोच्युत सेविनाम् ।
निःसंशयस्तु तद्भक्त परिचर्यारतात्मनाम् ।।

भगवान् की सेवा से सिद्धि मिलेगी कि नहीं इसमें संशय है परन्तु भक्त–सेवा से निश्चय ही सिद्धि मिलती है, इसमें जरा–भी संशय नहीं है ।

वाल्मीकि जी ने भगवान् से कहा था –

राम भगत प्रिय लागहिं जेही ।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही ।।

(रा.च.मा.अयो. १३१)

हे प्रभो! उसके हृदय में आप निवास करो, जिसका भक्तों से प्रेम हो ।

कथा–कीर्तन ही जीवन का आधार

परम श्रद्धेय श्री रमेश बाबा जी महाराज

बिना कथा–कीर्तन के कोई जीवन, जीवन नहीं है; ऐसे जीने से कोई लाभ नहीं, जिसमें भगवद्भक्ति नहीं है । वे जीवित होते हुए भी मुर्दे हैं, जो भगवान् के कथा–कीर्तन से विमुख हैं ।

जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी ।
जीवत सव समान तेइ प्रानी ।।

(रा.च.मा. बाल. ११३)

अथवा

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं
न जातु मर्त्योभिलभेत यस्तु ।

(भा. २.३.२३)

केवल स्वाँस चल रही है धौंकनी की तरह लेकिन हैं वे मुर्दे । इसलिए जब तक ये जीवन है, हर क्षण भगवद्–गुणगान में बीतना चाहिए । 'कथामात्रैक जीविनः' कथा–कीर्तन को अपना जीवन बना लो । जैसे सनकादिक का लक्षण लिखा है, वे चारों भैया परस्पर भगवच्चर्चा में प्रत्येक क्षण निमग्न रहते हैं; इसलिए ऐसा बनना चाहिए, नहीं तो वह भक्त नहीं जिसके जीवन में भगवद्–गुणानुवाद नहीं है ।

सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः ।
लीलाकथारसोन्मत्तः कथामात्रैकजीविनः ।।

(भा. माहा. २.४१)

भगवान् की कथा श्रवण करो, कीर्तन करो, यही जीवन है । जो स्थान (घर, आश्रम ..आदि) भगवान् के कथा–कीर्तन से रहित है, वह मुर्दाखाना है । वहाँ कदापि नहीं रहना चाहिए । चाहे वह कितना भी अच्छा स्थान है । अरे, इस भूलोक की तो बात ही छोड़ो यदि देवलोक, स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक भी है तो उसे भी छोड़ दो । ये बात श्रीमद्भागवत् में कही गयी है –

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोपि न वै स सेव्यताम् ।।

(भा. ५.१९.२४)

जहाँ तीन चीजें अगर नहीं हैं तो वहाँ एक क्षण भी नहीं रहो –

1. कथामृत की नदी – जहाँ भगवान् की लीला–कथाओं का गुणगान नहीं होता है, केवल वाद–विवाद, ग्राम्य कथाएँ (व्यर्थ–चर्चाएँ) होती हैं, वहाँ एक क्षण के लिए भी नहीं रहना चाहिए ।

2. भगवान् के आश्रित सन्तजन – जहाँ साधु–सन्त, भक्त नहीं हैं । भगवान् के आश्रय वाले; लड्डुआ–पेड़ा, विषय–भोगों, सेठों के आश्रय वाले नहीं ।

भगवान् के आश्रित जो संत हैं, उनकी पहचान क्या है ? लाल कपड़ा कि पीला कपड़ा कि सफेद कपड़ा....? ये सब उनकी पहचान नहीं है, उनकी तो एक ही पहचान है–

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र
पीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ।
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णै–
स्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ।।

जहाँ वे निवास करते हैं वहाँ भगवान् मधुसूदन के चरित्रों (कथाओं) की चारों ओर नदियाँ बहती रहती हैं, यानी हर समय दिन–रात भगवान् का गुणानुवाद होता रहता है। बस यही पहचान है सच्चे महात्माओं की व सच्चे आश्रम की। अतः वहाँ जो रहते हैं, संतों के मुख से निकले कथामृत का अतृप्त होकर पान करते हैं तो उनको माया के हथकंडे छू नहीं सकते ।

3. भगवान् के उत्सव–महोत्सव – जहाँ यज्ञेश भगवान् का यज्ञ नहीं है, यज्ञ कौन–सा ? उत्सव–महोत्सव अर्थात् समारोह के साथ जहाँ भगवान् का कीर्तन, नृत्य–गान न होता हो ।

अगर ये तीनों बातें जहाँ नहीं है तो देवलोक भी है, उसे भी छोड़ दो । यहाँ ब्रह्मलोक भी अर्थ लगाया है आचार्यों ने, कि चाहे ब्रह्माजी का लोक है तो उसे भी छोड़ दो ।

ये कृष्ण कृपा है कि यहाँ (मान मंदिर) पर तीनों बातें एक साथ हैं, यहाँ निरन्तर कथा–कीर्तन चलता रहता है और साधु भी यहाँ जो हैं, वे सब भगवान् के आश्रय वाले हैं । लड्डू–पेड़ा दास नहीं हैं और नित्य संकीर्तन–महोत्सव यहाँ होता है – एक साथ सैकड़ों लोग नाचते–गाते हैं ।

ऐसा संकीर्तन संसार में कहीं नहीं है कि जहाँ तीन–चार सौ लोग नित्य नृत्य–गान करते हों । ये तीनों बातें केवल कृष्ण–कृपा से ही संभव हैं । इन्हीं से इस मान मंदिर की शोभा है ।

'शोभा' वैभव–ऐश्वर्य से नहीं होती, पैसा से नहीं होती । मान मंदिर में जो धन प्रभु ने दिया है, वह शायद संसार में कहीं मुश्किल से होगा, नहीं तो नहीं होगा, प्रायः नहीं होगा । तीनों बातें एक साथ कहीं नहीं मिलती हैं । जब देवलोक में नहीं हैं तो फिर और कहाँ होंगी, अन्य किसी आश्रम की तुलना ही गलत है ।

कुछ दिन पहले एक दुर्घटना घटी, उसमें एक व्यक्ति की मृत्यु हो गयी तो हमसे लोगों ने कहा कि सारा गाँव दुखी है, आज कीर्तन नहीं होगा ।

हमने कहा – 'कीर्तन तो होगा; कीर्तन तो उस दिन भी नहीं रुका था, जिस दिन हमारी माँ की मृत्यु हुई थी ।' लोगों ने हमसे कहा था – 'दाह संस्कार हो जाने दो, उसके बाद कथा होगी, हमने कहा नहीं, 'कथामात्रैक जीविनः' कथा तो जरूर होगी ।' वहीं पास में उनकी लाश पड़ी रही और कथा भी हुई, कीर्तन भी हुआ । इसीलिए कीर्तन हॉल बनाया गया, यद्यपि बनाने में बदनामी भी हुई, लोगों ने निंदा की कि इतनी बड़ी बिल्डिंग बना रहे हैं, लेकिन हमने उसकी परवाह नहीं की, क्योंकि जहाँ आराधना होती है, भगवान् का उत्सव होता है वह स्थान सैकड़ों मंदिर से भी बढ़कर है । इसलिए हमलोग जब तक जीवित हैं, कथा–कीर्तन नहीं रुकेगा क्योंकि यह हमारा जीवन है 'कथामात्रैक जीविनः' । इसी तरह की निष्ठा कथा–कीर्तन के प्रति हर भक्त की होनी चाहिए कि कथा–कीर्तन ही हमारा जीवन बन जाए ।

भागवत में लिखा है अगर कोई गृहस्थ का घर भी है और वहाँ नित्य भगवद्–गुणगान होता है तो वह घर भी तीर्थ, मंदिर बन जाता है । इसी कारण से गृहस्थ ब्रजवासी ब्रह्मा, शिवादि के द्वारा भी पूजनीय बन गए थे क्योंकि ब्रजवासी लोग दिन–रात कृष्ण–गुणगान करते थे । संसार का हर घर भगवान् के कथा–कीर्तन के प्रभाव से तीर्थ बन सकता है ।

गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ।
मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ।।

(भा. ४.३०.१९)

गृहस्थी लोग भी हैं, अगर उनके घर में नित्य भगवान् की कथा या कीर्तन होता है तो वे बन्धन में नहीं आयेंगे, सरलता से भवसागर पार कर जाएँगे ।

यहाँ (मान मंदिर में) जो कीर्तन होता है उसको विदेशों में भी बैठे लोग इंटरनेट के माध्यम से नियम से सुनते हैं । अमेरिका, यूरोपादि देशों में रहकर भी उनको विज्ञान के चमत्कार से नित्य सत्संग की प्राप्ति है और श्रीमद्भागवत के इस श्लोक के अनुसार जो नियम से सत्संग–कीर्तन सुनते हैं उनको निश्चय ही भवबंधन से मुक्त होना चाहिये ।

ब्रजमण्डल के गाँव–गाँव में निष्काम भाव से भगवन्नाम का दान करते हुए मान मंदिर की बाल साध्वियाँ

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

गौरक्षा से राष्ट्ररक्षा

उद्देश्यपूर्ति में अग्रसर माताजी गौशाला
४०,००० से अधिक गोवंश का मातृवत् पालन ।

श्री मानमंदिर सेवा संस्थान गह्वरवन, बरसाना का अत्यद्भुत प्रकल्प ।

भगवान् श्रीकृष्ण की लोकपावनी लीलाओं में गोचारण का अग्रणी स्थान है । नग्नपद ब्रजभूमि की रज में अभिषिक्त गोपाल बने नंदनंदन ने गो, गोवत्स के लालन–पालनार्थ ग्वाल–बालों के साथ सम्पूर्ण ब्रज अवनि को अलंकृत किया और ब्रजवसुन्धरा ब्रह्मा, विष्णु, महेश सहित समस्त देव–देवियों की आराध्या हो पाई । सृष्टि में वात्सल्य की प्रतिमूर्ति गाय के अतिरिक्त कोई नहीं है । प्रत्येक कार्य के पूर्व व पश्चात् गोदान की महिमा का उल्लेख समस्त शास्त्रों में आता है । गाय की अनन्त महिमा है । जिस राष्ट्र में गाय निर्भय श्वास लेती हैं, वह राष्ट्र भी निरापद गौरवान्वित होता रहता है ।

गावश्च बहुलास्तत्र न कृशा न च दुर्बलाः ।
पयांसि दधिसर्पींषि रसवन्ति हितानि च ।।

(महाभारत.विराट.२८.२२)

सारे देवी–देवताओं का निवास भी गोमाता के शरीर में बताया गया है । सारे गो उत्पाद चाहे गोमूत्र, गोबर, दुग्ध, दही, घृत अथवा अन्यान्य औषधि सम्प्रत जीवमात्र के कल्याणार्थ ही हैं, उनसे किसी अवस्था में कोई क्षति नहीं है ।

ये सब बातें मानमंदिर सेवा संस्थान में यद्यपि दीर्घकाल से विचारणीय रहती थीं फिर भी कभी कल्पना भी नहीं की गयी कि यहाँ गोसेवा का कोई उपक्रम प्रारम्भ किया जाय । परन्तु श्रीराधारानी ब्रजयात्रा के प्रारम्भिक दिवसों में संकल्प के साथ–साथ हमारे सद्गुरुदेव पू. श्री बाबा महाराज –

महीभानुसुतायैव कीर्तिदायै नमो नमः ।
सर्वदा गोकुले वृद्धिं प्रयच्छ मम कांक्षिताम् ।।

उक्त श्लोक सभी यात्रियों से इस आशय से बुलवाया करते थे कि यह क्षेत्र वृषभानु बाबा के गो समूह का निवास स्थान ही था क्योंकि पास ही में दोहिनी कुण्ड स्थित है जहाँ गोदोहन होता था । उस प्रार्थना को श्रीजी ने साकार कर दिया, बस फिर क्या था श्रीकिशोरी जी स्वयं जो प्रेरणा दें वह कार्य क्यों नहीं हो; पूज्य बाबा महाराज ने छोटी–सी गौशाला की कल्पना किया । ७.७.२००७ को बाबा महाराज की जन्मदात्री पुण्यशीला माँ श्रीमती हेमेश्वरी शुक्ला जो स्वयं बहुत बड़ी गोभक्ता थीं, के नाम से "श्रीमाताजी गौशाला" की नींव रखी गयी । उस समय मात्र ७ गायों से इस गौशाला का पूजन हुआ । गौशाला खोलने की विवशता भी श्रीजी की इच्छा से इसलिए हुयी कि भगवान् द्वारा पूजित गोवंश आज कालक्रम से इतना उपेक्षित हो गया कि गाय को घरों से बाहर निकालकर अनाथ बना दिया गया ।

उनकी हत्याएँ होने लगीं, इस दुर्दशा ने बाबा को उद्वेलित कर दिया । यद्यपि बाबा का सिद्धान्त है कि कभी किसी भी सत्कार्य के लिए अर्थोपार्जन की न तो अपेक्षा रखी और न किसी के दरवाजे पर कभी याचना ही किया, इस सब के बाद भी आज ४०,००० से अधिक गोवंश का मातृवत् पालन श्रीमाताजी गौशाला में हो रहा है । वह कैसे होता है, यह सब राधारानी ही जानें । संस्थान का कोई बच्चा भी किसी के दरवाजे पर धर्मार्थ भी धनेच्छा से नहीं गया ।

यहाँ अधिकांश वे गायें हैं जिन्हें काटने के लिए ले जाया जा रहा था । मथुरा जनपद के अतिरिक्त भी राजस्थान के अलवर, भरतपुर जिलों से एवं हरियाणा के होडल, पलवल, गाजियाबाद, मुरादाबाद, बुलन्दशहर एवं इटावा, मैनपुरी आदि जनपदों तक से निरन्तर यहाँ गाय पहुँचने लगीं ।

कभी किसी से गाय रखने को मना नहीं किया गया । इसके अतिरिक्त जिन गौशालाओं में गोपालन में कठिनाई होती है वे भी यहाँ गायें छोड़ जाते हैं । संस्थान की एक गाड़ी से यहां के गौ सेवक निरन्तर आस–पास के क्षेत्रों से सड़क पर घूमती हुयी गायों को उठाकर लाते ही रहते हैं ।

गौशाला में अत्याधुनिक सुविधाओं के साथ गौमाता की सेवा चल रही है । हजारों टन भूसा रखने के गोदाम । हरे चारे की पर्याप्त व्यवस्था एवं सुन्दर देख–रेख से संचालित गौशाला निश्चय ही भारत का गौरव है और भारत को गौरव के शिखर पर ले जाने का कार्य कर रही है ।

भगवद्–शरणागति

श्री महेश चन्द्र शास्त्री

('शरण' शब्द शृ–ल्युट्–अन् करके सम्पन्न होता है) जिसका तात्पर्य है–आश्रय स्थल (आसरा) । अमर कोष में भी 'शरण' शब्द के दो अर्थ कहे गये हैं–'शरणं गृह रक्षित्रोः' 'घर और रक्षक', इससे स्पष्ट है कि जीव के वास्तविक आश्रयस्थल और रक्षक भगवान् श्रीहरि ही हैं ।

भरोसो दृढ़ इन चरननि केरौ ।
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माहिं अंधेरौ ।।
साधन और नहिं या कलि में जासों होय निबेरौ ।
सूर कहा कहै द्विविध आँधरौ बिना मोल को चेरौ ।।

प्ररक्षक शरण देने वाला प्रभु ही है । प्ररक्षक जो शरणागत की रक्षा करता है । वे भगवान् ही हैं । भगवान् की शरण में जो जाता है, उसके तीन कार्य हो जाते हैं–

१. संसृति चक्र नष्ट हो जाता है और भवसमुद्र पार होने से शान्ति मिल जाती है, निर्भय हो जाता है ।

२. कुशलता से रुकने की जगह मिल जाती है, जैसे समुद्र पार करने पर रुकने का स्थान मिल जाये इसी प्रकार धाम की प्राप्ति हो जाती है।

३. मंगल की प्राप्ति होती है और प्रभु योगक्षेम वहन करते हैं –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

(गी. ९.२२)

भोजन, वस्त्र की व्यवस्था भी भगवान् करते हैं । भोजन, वस्त्रादि की चिंता शरणागत भक्त नहीं करते हैं ।

भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः ।
योसौ विश्वम्भरो देवः सः किं भक्तानुपेक्षते ।।

जो स्त्री संसारी पति का आश्रय लेती है तो वह भी सामर्थ्य के अनुसार स्त्री का भरण–पोषण करता है किन्तु एक सीमा तक; सच्चा पति (रक्षक) तो भगवान् ही है । प्रह्लाद जी ने कहा है –

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदमुदन्वति मञ्जतो नौः ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट–
स्तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ।।

(भा. ७.९.१९)

हे भगवान् नृसिंह ! इस संसार में दुःखी जीवों का दुःख मिटाने का जो साधन माना जाता है, वह आपकी उपेक्षा करने पर एक क्षण के लिए ही होता है । यहाँ तक कि माँ–बाप बालक की शरण, रक्षक नहीं हो सकते । औषधि रोग नहीं मिटा सकती, समुद्र में डूबते हुए को नौका नहीं बचा सकती, सच्चे पति, रक्षक श्रीकृष्ण ही हैं और संसारी पति बेचारा स्त्री की क्या रक्षा करेगा? वह स्वयं रक्षित नहीं है ।

कालकर्मगुणाधीनो देहोयं पाञ्चभौतिकः ।
कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ।।

(भा. १.१३.४५)

यह पांचभौतिक शरीर काल, कर्म और गुणों के आधीन है, अजगर के मुँह में पड़े हुये पुरुष के समान यह पराधीन शरीर दूसरों की क्या रक्षा करेगा ? भगवद्–शरणागति या प्रेम में सर्वस्व त्यागना होता है । आकाशगंगा में हजारों लाखों सूर्य हैं । हमारे सूर्य से भी बड़े–बड़े हैं, भगवान् की माया शक्ति अनन्त है, दया–करुणा भी अनन्त है, अनन्त को जानने के लिए अनन्त शक्ति चाहिए, वो शक्ति है कृपा शक्ति और वह भगवान् की शरण में जाने पर ही मिलेगी । उन्हें जीतना है कृपा शक्ति के बल पर। इसलिए मनुष्यों, साधकों व परमार्थ पथ के पथिकों ! श्रीकृष्ण की शरण में चलो, क्यों जीवन को मिथ्या आसक्ति में नष्ट करते हो? उठो जागो और हरि शरण चलो ।

युगल नाम श्रुति सार है राधे कृष्णा राधे कृष्णा ।।

गीता में भगवान् ने स्वयं अर्जुन से कहा है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

(गी. १८.६६)

वर्ण–आश्रम आदि समस्त लौकिक–वैदिक धर्मों का परित्याग करके एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो, लौकिक धर्मों को त्यागने में जो पाप लगेगा उससे मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगा । तुम शोक मत करो । ब्रज–गोपियों ने लौकिक वैदिक धर्मों को छोड़ा, विषयों को छोड़ा, उनका क्या हुआ ? मंगल ही हुआ, श्रीवृन्दावनबिहारी को पा लिया। "सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्" गोपियों के इस त्याग से भगवान् प्रसन्न हो गए, ऋणी भी हो गए और कृपा करके सौभगमद को भी दूर किया –

न पारयेहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृंखलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ।।

(भा. १०.३२.२२)

हे गोपियों ! तुमने मेरे लिए घर–गृहस्थी की बेड़ियों को तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े–बड़े योगी–यति भी नहीं तोड़ पाते, यह तुम्हारा मिलन निर्दोष है । मैं अमर होकर भी तुम्हारे त्याग का बदला नही चुका सकता हूँ, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ ।

यहाँ शंका आती है कि लौकिक–वैदिक धर्म भी तो भगवान् के द्वारा स्थापित हैं, तो इनके त्याग से आज्ञा उल्लंघन का दोष या पाप लगेगा ।

"श्रुति स्मृति ममेवाज्ञा" श्रुति स्मृति में जो कहा वो मेरी ही आज्ञा है, किन्तु परम–धर्म (शरणागत–धर्म) का पालन करने के लिए लौकिक–वैदिक धर्मों के त्याग की आज्ञा दे रहे हैं । फिर उनके त्याग से पाप की सम्भावना कहाँ है?

"ननु यो हि यच्छरणो भवति, सः हि मूल्यक्रीतः पशुरिव तदधीनः, स तं यत् कारयति, तदेव करोति, यत्र स्थापयति, तत्रैव तिष्ठति, यद्भोजयति तदेव भुङ्क्ते इति शरणापत्ति लक्षणस्य धर्मस्य तत्वम् ।"

यदि कोई व्यक्ति शरणागत होता है, तो मूल्य द्वारा बिके हुये पशु की भाँति उन्हीं के अधीन रहता है । वे प्रभु उनसे जो करवाते हैं, वह वही करता है, जिस स्थान में रखते हैं, वह उसी स्थान में रहता है, जो कुछ खाने को देते हैं, वह वही भोजन करता है । यही शरण ग्रहण लक्षण धर्म का तत्व है ।

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा ।।
आत्मनिःक्षेप कार्पण्ये षड्विधः शरणागतिः ।।

(वायु पुराण)

वायु पुराण में छः प्रकार की शरणागति बताई गयी है–

१. अनुकूल भाव का संकल्प ।
२. प्रतिकूल भाव का वर्जन ।
३. भगवान् मेरी रक्षा करेंगे, ऐसा दृढ़ विश्वास ।
४. पालक के रूप में उनका वरण ।
५. आत्मनिवेदन ।
६. कार्पण्य ।

भक्ति शास्त्र में स्वकीय अभीष्ट देव के प्रति रोचमान प्रवृत्ति ही आनुकूल्य है, इसके विपरीत प्रातिकूल्य है । वे ही मेरे रक्षक हैं, इनके अतिरिक्त मेरा कोई नहीं है । ऐसा भाव होने से ही उन्हें पति रूप में वरण करना होता है । 'वे ही मेरी रक्षा करेंगे' ऐसा गजराज, द्रौपदी आदि के समान विश्वास ही 'रक्षिष्यति' का तात्पर्य है । अपने स्थूल–सूक्ष्म देह के साथ स्वयं को भगवान् को समर्पित करना ही आत्मनिक्षेप है और दैन्य, निरहंता आदि ही 'कार्पण्य' का लक्षण है ।

श्री बाबा महाराज कहते हैं कि छः में ऊपर के पाँच लक्षण न हों केवल दैन्य भाव हो तो भी साधक भगवत्कृपा प्राप्त कर लेता है । इसीलिए चतुर भक्तजने, जो दैन्य भगवत्–कृपा का हेतु है, उसी की याचना प्रभु से करते हैं ।

यद्दैन्यं त्वत्कृपा हेतु–र्न तदस्ति ममाण्वपि ।
तां कृपां कुरु राधेश यया तद्दैन्यमाप्नुयाम् ।।

(गोसाईं विट्ठलनाथ जी कृत 'विज्ञप्ति')

तेरा ही द्वार सच्चा दीनों का द्वार है,
राधा कृपा दया की, तू ही आधार है।
कोमल हृदय तेरा है, जो प्रेम से भरा है,
बिनती हमारी सुनले, करुणा पुकार है।

कृष्णाराध्या स्वामिनी प्रगटीं जै जै राधा रानी की

पूज्य बाबा महाराज के सत्संग से संकलित

संकलनकर्ता – श्रीराधाकान्त शास्त्री

ब्रजेन्द्रनन्दन नन्दनन्दन श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वेश्वर, सर्वाधार व सर्वाराध्य हैं, उन्हीं के कृपामय ईक्षण से निखिल जगत् का सृजन, पालन व संहरण होता है –

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ....।

(तैत्तीरीयोपनिषद्)

सच्चिदानन्द रूपाय विश्वोत्पत्यादिहेतवे ....।

(पद्मपुराण)

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ....।

(ब्रह्मसंहिता)

तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय..।

(न्यायसिद्धान्तमुक्तावली)

इस प्रकार ऋषि–महर्षियों के द्वारा प्रणीत व निर्णीत श्रुति–स्मृति सिद्धान्तों में श्रीकृष्ण का ही सर्वेश्वरत्व एवं सर्वकारणत्व सिद्ध है, एवं उन सर्वेश्वर सर्वकारण कारण श्रीकृष्ण की आह्लादिनी, सन्धिनी, ज्ञानेच्छा आदि अचिन्त्य अनन्त शक्तियाँ भी वर्णित हैं–

परास्य शक्तिः विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६.८)

तस्य शक्त्यस्त्वनेकधा आह्लादिनी सन्धिनी ज्ञानेच्छा
क्रियाद्याः बहुविधाः शक्तयः ।

(राधिकोपनिषद्)

इसी भाव को महावाणीकार प्रकट करते हैं –

अनन्त शक्ति आधीस अचिन्तक ऐश्वर्यादि अखिल सुखधाम।
सब कारने के कारण कर्ता नित्य निमित्त नियन्ता स्याम।।

(महावाणी सि.सु.)

अर्थात् श्रीकृष्ण ही अखिल ऐश्वर्य के आश्रय हैं, अनन्त आनन्द के धाम हैं व अचिन्त्य, अनन्त शक्तियों के अधिष्ठान हैं । उन अचिन्त्य, अनन्त शक्तियों में भगवान् की परमान्तरंगभूता, स्वरूपभूता, सर्वश्रेष्ठा आह्लादिनी शक्ति है । शक्ति, शक्तिमान में सर्वदा अभिन्न व अमूर्त रूप से वर्तमान रहती है । परन्तु श्रीकृष्ण की नित्य आह्लादिनी शक्ति श्रीकृष्ण से अभिन्न होते हुए भी लीला के निमित्त शक्ति की अधिष्ठात्री के रूप में भिन्न रूप से प्रकट होकर, अनन्त अचिन्त्य दिव्य रसमयी लीलाओं का सम्पादन कर सर्वेश्वर श्रीकृष्ण को आह्लादित करती हैं, उस समूर्त माधुर्याधिष्ठातृ रसविधातृ प्रेमप्रदातृ आह्लादिनी शक्ति से आलिंगित श्रीकृष्ण रस की, माधुर्य की चरम सीमा को प्राप्त होते हैं ।

वही श्रीकृष्ण की परमान्तरंगभूता प्राणाधिष्ठातृ आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा हैं ।

"तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमान्तरंगभूता राधा"

(राधिकोपनिषद्)

"प्रिया सक्ति आह्लादिनी प्रिय आनन्द स्वरूप ।"

(महावाणी सि.सु. २६)

"आनन्द आह्लादिनी अद्भुत वर गौर श्याम शोभा अपरम्पार ।" (महावाणी सि.सु. २५)

इसलिए शक्ति और शक्तिमान में अभेद होने से युगल में भी वारि वीचिवत व दुग्ध और तद्गत धावल्यवत अभेद है, श्री राधा ही श्री कृष्ण हैं और श्री कृष्ण ही श्री राधा हैं, दोनों एक ही स्वरुप हैं केवल नाममात्र के दो हैं –

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धि–
र्देहनैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत ।

महावाणीकार कहते हैं –

एक स्वरूप सदा द्वै नाम ।
आनन्द की आह्लादिनी स्यामा
आह्लादिन के आनन्द स्याम ।।

(महावाणी सि.सु. ३५)

कृष्ण रूप श्री राधिका, राधेरूप श्री स्याम ।
दरसन को ये दोय हैं एक ही सुख धाम ।।

(महावाणी से.सु.)

श्रीकृष्णप्रेम का मूर्तिमान स्वरूप ही श्रीराधा हैं, श्रीराधाप्रेम का मूर्तिमान स्वरूप ही श्री कृष्ण हैं ।

श्रीकृष्ण मन, काय, वचन से सर्वदा वही लीला करते हैं जो श्रीजी को प्रिय है और श्रीजी वही चाहती हैं जो श्यामसुन्दर को प्रिय है । श्रीजी अपने कोटि–कोटि प्राणों को श्याम पर न्यौछावर करती हैं और श्यामसुन्दर अपने कोटि–कोटि प्राणों को श्रीजी पर न्यौछावर करते हैं । इसी भाव को श्री हित हरिवंश महाप्रभु जी श्री चतुरासी जी में प्रकट करते हैं –

जोई–जोई प्यारो करै सोई मोहि भावै,
भावै मोहि जोई सोई सोई करै प्यारे ।
मोकौं तो भावती ठौर प्यारे के नैननि में,

प्यारौ भायैं चाहैं मेरे नैननि के तारे ।।
मेरो तो तन मन प्राण हूँ ते प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्राण प्रीतम मों सो हारे ।
जै श्री हित हरिवंश हंस हंसिनी
साँवल गौर कहाँ कौन करे जलतरंगिनि न्यारे ।।

(श्री हित चतुरासी जी)

श्रीकृष्ण सर्वदा श्रीजी की आराधना करते हैं, एवं श्रीजी के द्वारा श्यामसुन्दर आराधित होते हैं । श्रीजी श्याम की आराधिका हैं व श्याम श्रीजी के आराधक हैं –

"कृष्णेन आराध्यते इति राधा"
"कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका गान्धर्वेति व्यपदिश्यत इति।"

अतः श्यामा श्याम का नित्य संयोग है । वे एक क्षण के लिए भी परस्पर वियुक्त नहीं होते हैं, इसलिए जब भूमि भाराक्रान्त हो गई तब भूभारहरण के हेतु व अपने भक्तों के मनोविनोदन के निमित्त विविध रसमयी लीलाओं के सम्पादन के लिए ब्रह्माजी से प्रार्थित होकर जब श्यामसुन्दर अवनितल पर अवतरण की भूमिका बनाने लगे और श्रीजी से भूतल पर अवतीर्ण होने की प्रार्थना किये; तब श्रीजी ने कहा – हे श्यामसुन्दर !

यत्र वृन्दावनं नास्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ।।

(ग.सं.गो.ख. ३.३२)

अर्थात् जहाँ वृन्दावन न हो, श्रीयमुना जी की पावन धारा का दर्शन न हो एवं गिरिराज गोवर्द्धन के उन्नत शिखरों का दर्शन न हो भला वहाँ मेरे मन को सुख कहाँ मिलेगा ।
तब श्रीजी के प्रसन्नतार्थ श्री श्यामसुन्दर ने –

वेदनागक्रोशभूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिःस्वयम् ।
गोवर्धनं च यमुनां प्रेषयामास भूपरि ।।

(ग.सं.गो.ख. ३.३३)

नित्यधाम से ८४ कोस ब्रजभूमि, गोवर्द्धन पर्वत, श्री यमुना जी को इस भूतल पर भेजा; धाम का अवतरण हुआ, इसके पश्चात् सभी लीला–परिकर ब्रज में अवतीर्ण हुए । चन्द्रवंश की परम्परा में श्री नन्दबाबा प्रकट हुए एवं सूर्यवंश की परम्परा में श्री वृषभानु जी प्रकट हुए ।

श्री नन्दबाबा और वृषभानु जी परम मित्र थे । श्रीनन्दबाबा व यशोदा मैया को श्याम सुन्दर की बाल–लीलाओं के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ एवं श्रीवृषभानु जी और कीर्ति मैया के यहाँ श्रीराधारानी ने प्रकट होकर बाल लीलाएँ की ।
वृषभानु बाबा की ब्रज में तीन राजधानियाँ थीं –

रावल वरहानौं बरसानौं ।
तीन ठौर रजधाँनी जानौं ।।

(ब्रजप्रेमानन्दसागर)

अथवा

'रावल बरहानौं बरसानौं तीन ठौर रजधानी ।।'

(श्रीलाड़ सागर)

रावल, बरहाना एवं बरसाना ।

अतः सख्य प्रेम के कारण जब नन्दबाबा गोकुल में विराजते थे तब वृषभानु जी रावल में; नन्दबाबा–बसई में तो वृषभानु जी–बरहाना और जब नन्दबाबा–नंदगाँव में तो वृषभानु जी–बरसाना में विराजते थे ।

प्राक्काल में महाराज सुचन्द्र और उनकी भार्या महारानी कलावती ने गोलोकेश्वरी श्रीराधारानी की बाललीलाओं के दर्शन की उत्कट अभिलाषा से दीर्घकाल तक तप किया; उसी तप के फलस्वरूप द्वापर में श्रीसुचन्द्र जी व श्रीकलावती जी श्रीवृषभानु बाबा व श्रीकीर्ति मैया के रूप में प्रकट हुए ।

गर्गसंहिता गोलोक खण्ड के अनुसार इन्हीं वृषभानु जी के यहाँ भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी तिथि सोमवार मध्यान्ह काल की पावन वेला में श्री राधारानी कीर्ति मैया के उदर से कलिन्दजाकूलवर्ती निकुँजप्रदेश के एक सुन्दर मन्दिर में अवतीर्ण हुईं ।

आज कृष्णाराध्या श्रीजी प्रकट हुई हैं अतः देवगण प्रमुदित होकर नन्दन वन के दिव्य पुष्पों का वर्षण कर रहे हैं । कमलों की सुगन्ध से युक्त शीतल, मन्द सुगन्धित वायु प्रवाहित हो रही है, सम्पूर्ण दिशायें प्रसन्न व निर्मल हो उठीं, नदियों का जल स्वच्छ हो गया, शत–शत चन्द्रमाओं की कान्ति को भी विलज्जित करने वाली उस दिव्य कन्या के दर्शन से कीर्ति मैया व वृषभानु बाबा का हृदय अतिशय हर्ष से युक्त हो गया, समस्त मंगल कृत्य कराकर बाबा ने ब्राह्मणों को दो लाख गायों का दान किया । सम्पूर्ण ब्रज में हर्ष, उल्लास, उत्साह की लहर दौड़ गयी । सभी ब्रजवासी दौड़–दौड़कर बधावा लेकर बाबा वृषभानु के द्वार पर आने लगे –

चलौ वृषभान गोप के द्वार ।
जन्म लियौ मोहन हित स्यामा आनन्द निधि सुकुमार ।।
गावति जुवति मुदित मिलि मंगल उच्च मधुर धुनि धार ।
विविध कुसुम कोमल किशलय दल सोभित बंदन वार ।।
विदित वेद विधि विहत विप्रवर करि स्वस्तिनु उच्चार ।
मृदुल मृदंग मुरज भेरी डफ दिवि दुन्दुभि रवकार ।।
मागद सूत बंदी चारन जस कहत पुकारि–पुकारि ।
हाटक हीर चीर पाटम्बर देत सम्हारि–सम्हारि ।।
चंदन सकल धेंनु तन मंडित चले हैं ग्वाल सिंगार ।
जय श्रीहित हरिवंश दुग्ध दधि छिरकत मध्य हरिद्रागार।।

(श्री हित स्फुट वाणी)

सम्पूर्ण ब्रज मृदंग, मुरज, वीणा, दुन्दुभि आदि विविध वाद्यों की मृदुल ध्वनि से गुंजायमान हो रहा है।

ब्रजवामाएँ षोडश श्रृंगार से सुसज्जिता होकर उच्चस्वर से मधुर–मधुर मंगल गीत गाती हुईं भानु पौरी पर पहुँच रही हैं । आनन्दित होकर ब्रजवासी परस्पर एक–दूसरे के ऊपर दधि, दूध का सिंचन–लेपन कर रहे हैं, सतयुग, त्रेता, द्वापर के बड़े–बड़े वैदिक ऋषि उत्सव में भाग लेकर उच्चस्वर में स्वस्तिवाचन पाठ कर रहे हैं ।

श्री श्रृंगी जी महाराज, श्री नवयोगेश्वर जी, श्री गर्गाचार्य जी आदि महर्षियों ने लगन, तिथि, नक्षत्र आदि को विचार कर वृषभानु बाबा से कहा –

'सुद भादों शुभ मास अष्टमी अनुराधा के शोधरी ।
प्रीति योग बल बालव करन लग्न धनुष वर बोधरी ।।'

इस समय अनेकों शुभ योगों का संयोग है । इस पावन काल में प्रकट होने वाली कन्या उमा, रमा आदि से भी वन्दिता होगी । अनेकों ऋषि–महर्षि इस कन्या की कृपा की याचना करेंगें, इसके दर्शन मात्र से समस्त मंगलों की सृष्टि होगी, इसका नाम राधा होगा । इस प्रकार ऋषियों ने जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न कराए ।

ब्रजवासियों ने खूब धूमधाम से उत्सव मनाया। श्री सूरदास जी कहते हैं जितना आनन्द नन्दनन्दन के प्राकट्य में आया, उससे दूना आनन्द श्रीजी के प्राकट्य में आया और नन्दोत्सव से दूना उत्सव वृषभानु बाबा के महल में हुआ है –

'जो रस नंद भवन में उमग्यो ताते दूनो होत री ।।'

श्री सूरदास जी की वाणी में –

जन्म लियो वृषभान गोप के बैठे सब सिंघद्वार री ।।
लग्न घड़ी बलि नक्षत्र शोध के गुरुजन कियो विचार री ।।
कंचन मणि आँगन आगे रही बोलत द्विजवर बेनरी ।।
कबहुँक सुध पावत सु भवन में पुत्र जनम के चेनरी ।।
इतने एक सखी आई धाय के जहाँ बैठे ग्वालरी ।।
वेगि पुकार कह्यो मुख आली प्रगटी सुता लघु वालरी ।।
तब हँसि तारी दे गुरुजन को देखे जनम विधानरी ।।
हमारे कोटि पुत्र की आसा पूरन करी वृषभानरी ।।
कर भाजन श्रृंगी जू गर्ग मुनि लग्न नक्षत्र बल शोधरी ।।
भए अचरज ग्रह देखि परस्पर कहत सबन प्रति बोधरी ।।
सुद भादो शुभ मास अष्टमी अनुराधा के शोधरी ।।
प्रीति योग बल बालव करन लग्न धनुष वर बोधरी ।।
प्रथम पहर दिन उदित दिवाकर सत्या सुखद सुजातरी ।।
नाम करन राधा रति रंजन रमा रसिक बहु भांतरी ।।
सुन वृषभान सुता जिन मानो ऐसी रमा रति लोलरी ।।
नाहिन ओर सुन्दर त्रिभुवन में श्री राधा समतोलरी ।।
नाहिन सची रमा गिरिजा रति रोम रोम प्रति ठानेरी ।।
नवनिधि चार पदारथ को फल आयो सकल ग्रहतानेरी ।।
जब ब्याहन शुभ योग होयगो शोभा कहत न आवेरी ।।
दस ओर चार लोक को नायक सोई सुता वर पावेरी ।।
तब हँस कह्यो दुर्वासा सबनसों सुनो श्रुति सकल गुवालरी।।
मेरे हि चित आयो निश्चय नंद महर घर बालरी ।।
वृन्दावन रस रास रसिकमणि दम्पति सम्पति मानेरी ।।
संकेत स्थल विहरत दोऊ सोई सकल यह जानेरी ।।
युवती यूथ मध्य रसिक शिरोमनि वल्लभ कुल नंद लालरी ।।
यह जोरी जुग जुगत होयगी श्रीराधारमण गोपालरी ।।
शिव,विरंची जाकी जूठन न पावत सोई ग्रास परस्पर देतरी।।
कुँजन–कुँजन क्रीडत अद्‌भुत अगम निगम रस लेतरी ।।
यह विध कह्यो द्विजराज जुगत सों ग्वाल मंडली जानेरी ।।
जय जय कार करत सुर लोकन बाजत तूर निशानरी ।।
घर घर तें सब गोपी निकसी गावत मंगल बालरी ।।
पिकबेनी मृगनेनी सुंदर चलत सुचाल मराल री ।।
जो रस नंद भवन में उमग्यो ताते दूनो होतरी ।।
हय गय धेनु ओर मणि दीनी बंदीजन द्विज बोहोत री ।।
वसन विचित्र सबन पहराये सब शिशु देखन जायरी ।।
मुख अवलोकि कहत चिरजीयो पुलकि–पुलकि सचु पायरी।।
सुर मुनि नाग धरनी जंगम को आगम अति सुख देतरी ।।
शशि खंजन विद्रुम शुक के हरि इनको छिन बल लेतरी ।।
यह छवि निरख निरख सचु पावत पुनि डोरत तृन तोररी ।।
'सूरदास' उर बसो निरंतर राधामाधव जोररी ।

श्री राधारानी के प्राकट्य काल के विषय में, प्राकट्य स्थल के विषय में एवं श्रीजी का अवतरण नंदनन्दन से पूर्व हुआ अथवा पश्चात् इस विषय में सन्त महापुरुषों की वाणियों में भिन्न–भिन्न प्रमाण उपलब्ध होते हैं । यथा –

१. श्रीराधारानी का प्राकट्य काल –

श्रीजी के प्राकट्य काल के विषय में मध्यान्ह काल (दोपहर) का प्रमाण उपलब्ध होता है एवं अरुणोदय वेला (प्रभातकाल) का भी वर्णन प्राप्त होता है ।

मध्यान्ह काल

गर्ग संहिता के अनुसार श्रीराधारानी का जन्म मध्यान्ह काल (दोपहर) में हुआ ।

घनावृते व्योम्नि दिनस्य मध्ये भाद्रे सिते नागतिथौ च सोमे।
अवाकिरन्देवगणाः स्फुरद्भिस्तन्मन्दिरे नन्दनजैः प्रसूनैः ।।

(गर्ग.गो.ख.८.७)

प्रभात काल (अरुणोदय वेला)

श्रीसूरदास जी की वाणी में –

प्रथम पहर दिन उदित दिवाकर सत्या सुखद सुजातरी ।
नाम करन राधा रति रंजन रमा रसिक बहु भांतरी ।।

श्रीचाचा वृन्दावनदास जी की वाणी में –

कीरति कन्या जाई । सवनि मन भाई ।। उठि मंगल गाई
वहो परे हैं निसाननि घाउ तौ अरुन उदै भयौ ।।

श्री किशोरीदास जी की वाणी में –

जा दिन जनम लियौ श्रीराधा ।
कीरति वेद पुरान अगाधा ।।
शुभ नक्षत्र गुरुवार है आई ।
अरुनोदय प्रगटी सुखदाई ।।

आज भी राधाष्टमी के पावन पर्व पर श्रीजी का अभिषेक प्रभात की वेला में ही किया जाता है ।

२. श्रीजी के प्राकट्य स्थल के विषय में बरसाना व रावल दोनों का वर्णन प्राप्त होता है ।

बरसाना –

जैसे ही बरसाने में यह बात फैली कि कीर्ति जू के लाली भई है–एक सखी तुरन्त दौड़कर नन्दगाँव पहुँची और बाबा नन्द और यशोदा मैया कूँ सूचना दयी, सुनते ही यशोदा जी आनन्द मग्न हो गयीं –

श्री नन्ददास जी वाणी में –

बरसाने तैं दोरि नारि इक नंद–भवन में आई ।
आजु सखी, मंगल में मंगल कीरति कन्या जाई ।।
सुनि जसुमति मन हरख भयो अति, बोलि लई ब्रजबाला।
मुक्ता, मनि माला भूषन–पर पठए साज रसाला ।।
चलि गज–गामिनि साथन हाथन कंचन–थार सुहाए ।
कमलन के ऊपर खेलत मनों अगनित–चंद जु धाए ।।
डह–डहे मुख–छबि छाजत राजत, लाजत कोटिक–मैना।
कंजन पै खेलत मनों खंजन अंजन–रंजित नैना ।।
कुंडल मंडित आनन राजत उपमा अधिक बिराजै ।
हार सुढार उरन बर सोहत निरखि सची मन लाजै ।।
गावति गीत करति जग पावन भामिनि मंदिर आई ।
नंदराव जू के आँगन में आनंद बजति बधाई ।।
देखि मुदित बृषभानु भए अति, भेंट सुरुचि सों लीनी ।
गदगद कंठ सवन सों बोलत बीथिन पावन कीनी ।।
कीरति ढिग निरखी सुठि कन्या, धन्या अधिक अपारा ।
कौतुक में कौतुक रस भीनों बरखत सीसन धारा ।।
सब जग–धाम धाम–पुनि जाकों, सेस–धाम जिहि मानैं ।
'नंददास' सुख कों सुखसागर प्रगटी ह्वै बरषानैं ।।

श्री कृष्णदास जी की वाणी में –

आजु बरसानें बजत बधाई ।
भाग बड़े कीरति रानी कें ऐसी कन्या जाई ।।
दुंदुभि ढोल भेरी सहनाई बाजन बाजत द्वारे ।
श्रीवृषभानु राइजू की पौरी धूम मची अति भारे ।।
दान देत वृषभानु भाँवते जो जाचत तिहि काल ।
'कृष्णदास' सब देत असीसै–चिर जीवौ यह बाल ।।

अथवा

प्रगट भई सोभा त्रिभुवन की वृषभानु गोप कें भाई ।
अंग–अंग की निकाई बरनी न जाई नख–सिख सुंदरताई ।।
धन्य सु गाँउ–ठाँउ बरसानौं जहँ नव निधि सिधि आई ।
'कृष्णदास' गिरिधर की जोरी रचि–पचि बिधना बनाई ।।

श्री गोविन्द स्वामी जी की वाणी में –

आजु बरसानें बजत बधाई ।
कुँवरि भई जो मातु कीरति कै कीरति सब जग छाई ।।
कोटि रमापति रूप माधुरी ना•वै छबि समताई ।
धन्य भाग वृषभानु गोप कौ सुता अलौकिक पाई ।।
दधि हरदी कुंकुम लै छिरकत सब मिलि मंगल गाई ।
'गोविन्द' प्रभु गिरिधर की जोरी निरखि दास बलि जाई।।

श्री परमानन्द दास जी की वाणी में –

प्रगटी वृषभानु–गृह लली ।
घर–घर तैं सब गोप बधूएं मंगल साजि चली ।।
ता दिन तैं ब्रज मंडल फूल्यौ फूली कुंज–गली ।
फूल्यौ आँगन नंदराइ कौ मानौं कमल कली ।।
बरसाने में रंग बढ्यौ अति छिरकत घोष–गली ।
'परमानन्द' नंद–नन्दन की जोरी सुघर मिली ।।

श्री हरिराम व्यास जी की वाणी में –

बाजति आजु बधाई बरसानैं में ।
श्री वृषभानु राइ जू की रानी कुँवरि किशोरी जाई बरसानैं में।।
गोपी संग लै महरि जसोदा मंगल गावति आई बरसानैं में ।
नंदीश्वर तें नाचत नंद महर घर बात लुटाई बरसानैं में ।।
फूले ब्रजवासी सब नाँचत दधि की कीच मचाई बरसानैं में ।
लटकत फिरत श्रीदामा हँसि हँसि दीनी है नंद दुहाई बरसानैं में।।
व्यौंम विमान अमर गन छाये कुशुमावलि बरसाई बरसानैं में ।
भये मनोरथ व्यास दास के फूल भई अधिकाई बरसानैं में ।।

श्रीराधासुधानिधि के अनुसार –

"यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानु गेहे" (४०)

पूर्ण अनुराग व रस की मूर्ति विद्युल्लता के समान आभा वाली श्रीजी कृपा करके श्रीवृषभानु जी के गृह में प्रकट भई हैं ।

अस्तीति वर्तमानेनाद्यापि श्रीवरसान्वादिषु वात्सल्यादिलीला नित्यैव राजते तन्तु कृपयेति नेदं कर्मज्ञानादि साधनेन लभ्यम् । (रसकुल्या)

अर्थात् 'अस्ति' क्रिया वर्तमान काल की द्योतक है–इसका तात्पर्य आज भी श्री बरसाना आदि में वात्सल्य आदि भाव के अनुरूप लीला नित्य ही विराजमान है किन्तु यह कृपालभ्य है न कि कर्मज्ञानादि साधन लभ्य ।

रावल

श्रीचतुर्भुजदास जी की वाणी में –

रावलि राधा प्रगट भई ।
श्रीवृषभान गोप गरुवे कुल प्रगटी अति आनंद भई ।।
रूपरासि रसगसि रसिकिनी नव अंकुर अनुराग नई ।
चिरजीवहु चतुर चिंतामनि प्रगटी जोरी अति पुन्यमई ।।
गुननिधान अति रूपनागरी करत ग्यान गिरिधरन सही ।
'चत्रभुज' प्रभु अद्भुत यह जोरी सुंदर त्रिभुवन सोभा नहिं जात कही ।।

श्री गोविन्द स्वामी जी की वाणी में –

बधाई बाजत रावलि माँझ ।
श्रीवृषभानु गोप कें प्रगटी मानों फूली साँझ ।।
गोपीजन आई चहूँ दिसि तें गावति मंगलाचार ।
मंगल कलस कनक केसरि भरि बाँधी बंदनबार ।।
अच्छत दूब रोचना बंदन भरि भरि लीने थार ।
ब्रजवासी प्रमुदित मन डोलत जाचक भूखे द्वार ।।
हरखि निरखि देवगन कुसुमनि बरखत है आकास ।
तिहिं औसर अपनो तन मन धन वारत 'गोविन्ददास' ।।

श्री परमानन्द दास जी की वाणी में –

आजु रावलि में जै–जैकार ।
प्रगट भई वृषभान गोप कें श्रीराधा अवतार ।।
गृह–गृह तें सब चलीं बेगिही गावति मंगलाचार ।
प्रगट भई सोभा त्रिभुवन की रूप रासि सुखकार ।।
नाचत गावत करत कुतूहल भीर गई अति द्वार ।
'परमानंद' वृषभानु–किसोरी जोरी नंददुलार ।।

श्री हरिराम व्यास जी की वाणी में –

भैया आजु रावलि बजति बधाई ।
ढोल भेरि सहनाइनु धुनि सुनि खबरि महावन आई ।।
वह देखौ वृषभानु भवन पर विमल धुजा फहराई ।
दूब लियें द्विज आयौ तबहीं कीरति कन्या जाई ।।
नंद जसोदा फूले तन मन आनंद उर न समाई ।
मंगल साज लियें बृज सुन्दरि गावति गीत सुहाई ।।
चोवा चंदन अगर कुम कुमा भादौं कीच मचाई ।
व्यास दास कुँवरि मुख निरखत कुसुमावलि बरसाई ।

३. नन्दनन्दन से पूर्व श्रीजी का प्राकट्य हुआ अथवा पश्चात्। (अर्थात् श्रीजी आयु में श्यामसुन्दर से बड़ी हैं अथवा छोटी)

प्रायः भक्त लोग इस बात से विज्ञ हैं कि जन्माष्टमी के बाद राधाष्टमी का उत्सव होता है अर्थात् नन्दनन्दन के अवतरण के १५ दिन बाद श्रीजी का अवतरण हुआ है परन्तु कुछ महापुरुषों की वाणियों में श्री जी के प्राकट्य को प्रथम गाया गया है अर्थात् श्रीजी का प्राकट्य नन्दनन्दन से प्रथम हुआ है। यथा –

श्री कुम्भनदास जी की वाणी में –

राधेजू सोभा प्रगट भई ।
वृन्दावन गोकुल–गलियनि में सुख की लता छई ।।
प्रति–प्रति पद संकेत गोवर्द्धन, उपमा उपजति नई ।
'कुम्भनदास' गिरिधर आवहिंगे, आगें पठै दई ।।

श्री कुम्भनदास जी की वाणी में श्यामसुन्दर ने श्रीजी को पहले ब्रज में भेजा है पश्चात् स्वयं आए हैं और अन्य वाणियों में ऐसा भी प्राप्त होता है कि श्यामसुन्दर प्रथम आए। श्रीराधारानी के जन्मोत्सव में श्री नन्दबाबा और श्रीयशोदा जी भी आए हैं – यशोदा जी के अंक में नन्हे से कन्हैया भी आए हैं । कीर्ति कन्या की अद्भुत कान्ति को देखकर नंदनन्दन को ही न्योछावर कर दिया श्री यशोदा जी ने ।

श्रीदामोदर स्वामी जी की वाणी में –

श्री वृषभानु के आजु वधाई ।
आनन्द निधि सोभा निधि कीरति कन्या जाई ।।
फूले नर नारी बरसानैं घर–घर वजी वधाई ।
फूले नंद जसोदा मन में फूले कुँवरि कन्हाई ।।

श्री सहचरी सुख जी महाराज की वाणी में –

वृषभानु घर कन्या भई महा मोद गोकुल में छयौ ।
पलना में किलकतु साँवरौ रति बीज जसुमति हिय बयौ ।।

इस प्रकार श्रीराधारानी के प्राकट्य के विषय में भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के भिन्न–भिन्न महापुरुषों की वाणियों में व ग्रन्थों में अनेकविध वचन प्राप्त होते हैं ।

इस वैभिन्य को देखकर कभी–कभी सामान्य जनों की बुद्धि भ्रान्त हो जाती है, चित्त संशयाक्रान्त हो जाता है परन्तु प्रामाणिक सन्तों व ग्रन्थों के विषय में संशय का होना अधःपात का हेतु होता है । गीता में भगवान् कहते हैं –

'अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।' (गी. ४.४०)

'अर्थात् अज्ञ, अश्रद्धालु एवं संशयात्मा शीघ्र ही परमार्थ पथ से भ्रष्ट हो जाते हैं ।'

प्रस्तुत पद्य के भाष्य में भगवान् शंकराचार्य कहते हैं कि **'अज्ञाश्रद्दधानौ यद्यपि विनश्यतः तथापि न तथा यथा संशयात्मा, संशयात्मा तु पापिष्ठः सर्वेषाम् ।'**, अज्ञ व अश्रद्धालु की अपेक्षा संशयात्मा अधिक अपराधी होता है, उसका अधिक विनाश होता है । इसलिए सत्यनिष्ठ सन्त, सद्ग्रन्थों के विषय में संशय के लिए चित्त में स्थान नहीं होना चाहिए ।

प्रामाणिक सन्तों की वाणियों में व ग्रन्थों में कोई बात समझ में न आए तो वहाँ – **'मतिदौर्वल्यम् न तु मतदौर्वल्यम्'**, अर्थात् अपनी मति का ही दौर्बल्य समझना चाहिए न कि मत का; क्योंकि वे सन्त हम सामान्य जनों की अपेक्षा तप, तेज, त्याग, तितिक्षा में अनन्तगुणित अधिक होते हैं; उसी तप, तेज के आधार पर जो दिव्य लीलाओं की अनुभूतियाँ उनको हुईं, जो भाव उनके तपःभूत अन्तःकरण में प्रकट हुए, उन्हीं भावों का, अनुभूतियों का प्रसाद हमें प्रदान किया । अतः उसमें संशय के लिए कोई अवकाश ही नहीं है । सन्त वही लिखते हैं जो श्रीराधामाधव करते हैं और प्रभु वही लीला करते हैं जिसको सन्तजन लिखते हैं । अतः परम रसिकाचार्य श्रीभगवतरसिक जी पूर्ण दृढ़ता के साथ कहते हैं –

गावैं हम सोई करैं सहज लाड़िली लाल ।
करैं लाड़िली लाल सो हम गावैं तत्काल ।।

अथवा

श्रीमद्भागवत में श्रीब्रह्मा जी कहते हैं –

'यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ।'

(भा. ३.९.११)

'अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोपि ।'

(भा. १०.१४.२)

प्रस्तुत पद्य की व्याख्या में श्रीधर स्वामी जी लिखते हैं –

'स्वेच्छामयस्य स्वीयानां भक्तानां यथा यथेच्छा तथा तथा भवतः।'

'अर्थात् भगवान् अपने परम आत्मीय भक्तों की भावना के अनुरूप ही विग्रह धारण करते हैं और उनके भाव को पुष्ट करने वाली लीलाएँ करते हैं ।'

पाणिनि जी के अनुसार 'स्व' शब्द आत्मा, आत्मीय, ज्ञाति व धन अर्थ में सक्त है ।

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् । (१.१.३५)

श्रीधर स्वामी जी के द्वारा यहाँ 'स्व' शब्द आत्मीय अर्थ में ग्रहीत है ।

अतः सभी महापुरुष परम प्रामाणिक हैं, सभी ने लाड़िली लाल की ललित लीलाओं का रसास्वादन किया है । अतः वे परम प्रणम्य हैं व उनकी वाणियाँ परम आदरणीया हैं । यदि हम किसी भी प्रकार की हठवादिता के कारण किसी भी सम्प्रदाय के आचार्य व वाणी का अनादर करते हैं तो यह किसी न किसी अंश में हमारे आराध्य का ही अनादर है क्योंकि वे सभी आचार्य, संत श्रीजी के ही अन्तरंग परिकर हैं । तत्तद सम्प्रदायों में वे सखी, सहचरी, मंजरी के रूप में मान्य हैं ।

एक तरफ हम श्रीजी के परिकर के रूप में श्रीजी के नित्य निकुञ्जस्थ – शुक, पिक, मृग मयूरादि की भी वन्दना करते हैं –

हे राधाया रतिगृहशुका हे मृगा हे मयूराः
भूयोभूयः प्रणतिभिरहं प्रर्थये वोनुकम्पाम् ।।

(रा.सु.नि.२६२)

और दूसरी तरफ हम अपने सम्प्रदायवाद के आग्रह के कारण अपनी मूढ़धर्मिता के कारण श्रीजी के नित्य परिकर अन्य सम्प्रदायाचार्यों का, सन्तों का अनादर करते हैं, उनकी वाणियों में आक्षेप–प्रक्षेप करते हैं तो निश्चित ही यह हमारी अपूर्ण आस्था का परिचय है और इससे एक नवीन अपराधमयी परम्परा का उदय होता है जो कि समाज में विघटन व विषमता का सृजन कर विनाश की हेतु होती है। यदि हम केवल अपने सम्प्रदाय के आचार्य व वाणी का सम्मान करते हैं व अन्य सम्प्रदाय के संतों की वाणियों का अनादर करते हैं तो यह ऐसे ही हुआ जैसे कि–

एक पति के दो पत्नी थीं दोनों में प्रबल सौतिया डाह था, अतः चरण सेवा के लिए पति का एक–एक पैर बाँट लिया, वे समयानुसार अपने–अपने बाँट वाले पैर की तो सेवा करती हैं परन्तु दूसरे पैर को सौतेला जानकर तोड़ती–मरोड़ती हैं तो इससे क्या पति को सुख मिलेगा? वे भूल जाती हैं कि दूसरा पैर भी तो उसी पति का है जिसकी वे पत्नी हैं ।

श्री भगवतरसिक जी लिखते हैं –

भरता कै द्वै भामिनी, बसैं एक ही गाँव ।
सेवा साधैं औसरनि तोरैं पति के पाँव ।।
तोरैं पति के पाँव सौतियारौ सौ मानैं ।
ऐसेहि सब मत बाद, करै खण्डन मत आनैं ।।
आचरज अभिमान आपकौ मानैं करता ।
तजि विरोध नहिं भजैं आपनौं भगवत भरता ।।

'अर्थात् वृथा ही अपनी आग्रहवादिता के कारण, आचार्यत्व के अभिमान के कारण अपने को कर्ता समझ बैठे हैं, आपसी विरोध और वैमनस्य को त्यागकर श्रीहरि रूपी भर्ता को नहीं भजते हैं ।'

इसलिए इस भेद भ्रम का वारण करके लीला रस का ही आस्वादन करना चाहिए ।

शेष पृष्ठ ३० पर

I'M MY ONLY FEAR YOU'RE MY ONLY SAVIOUR

Dr. RadhaMadhav Das

evaṁ sva-karma-patitaṁ bhava-vaitaraṇyām
anyonya-janma-maraṇāśana-bhīta-bhītam
paśyañ janaṁ sva-para-vigraha-vaira-maitraṁ
hanteti pāracara pīpṛhi mūḍham adya

Bh. 7.9.41

Prahalad maharaj said, my dear Lord, You are always transcendentally situated in pure spiritual realm, on the other side of the river of death, but because of the reactions of our own activities evaṁ sva-karma-patitaṁ , we are suffering in this world of duality on this side. Indeed, we have fallen into this river and are repeatedly suffering the pains of birth and death and eating horrible things. Now kindly look upon us — not only upon me but also upon all others who are suffering— and by Your causeless mercy and compassion, deliver us and maintain us.

After Hiraṇyakaśipu was killed, the Lord continued to be very angry, and the demigods, headed by Lord Brahmā, could not pacify Him. Even mother Lakṣmī, the goddess of fortune, the constant companion of Nārāyaṇa, could not dare come before Lord Nṛsiṁhadeva. Then Lord Brahmā asked Prahlāda Mahārāja to go forward and pacify the Lord's anger. Prahlāda Mahārāja, being confident of the affection of his master, Lord Nṛsiṁhadeva, was not afraid at all. He very gravely appeared before the Lord's lotus feet and offered Him respectful obeisances. Lord Nṛsiṁhadeva, being very much affectionate toward Prahlāda Mahārāja, put His hand on Prahlāda's head, and because of being personally touched by the Lord, Prahlāda Mahārāja immediately achieved brahma-jñāna, spiritual knowledge. Thus he offered his prayers to the Lord in full spiritual knowledge and full devotional ecstasy.

Prahlāda Mahārāja said, it is very clear my Lord, neither You ever desire for anyone to get entangeled in karmic reactions of this world nor does Your illusory potency inspires Jivas towards sense gratification. It is only by one's own deeds evaṁ sva-karma-patitaṁ that one reaps good and/or bad resultant reactions and thus, remains shackled in the sansara-chakra, cycle of repeated birth and death.

Prahlāda Mahārāja, a pure Vaiṣṇava, prays to the Lord not only for himself but for all other suffering living entities. There are two classes of Vaiṣṇavas — the bhajanānandīs and goṣṭhy-ānandīs. The bhajanānandīs worship the Lord only for their own personal benefit, but the goṣṭhy-ānandīs try to elevate all others to Kṛṣṇa consciousness so that they may be saved.

Prahlāda Mahārāja continues, O my Lord, O Supreme Personality of Godhead, original spiritual master of the entire world, what is the difficulty for You, who manages the affairs of the universe, in delivering the fallen souls engaged in Your

devotional service? You are the friend of all suffering humanity, and for great personalities it is necessary to show mercy to the foolish. Therefore I think that You will show Your causeless mercy to persons like us, who engage in Your service.

People often make lame excuses, I want to practice devotional life but? My parents do not understand, my wife does not support, my sons stop me, my work restricts me and so on. Poor fellows do not know that the first and foremost opposition offered to us is by our very own Mind. Thats why I often say,"I'm my only fear. The world will oppose us later, first its our own mind, attached to the body and bodily concept of life. Once, this enemy is defeated, others are already won over. Lord Sri Kṛṣṇa says in the Bhagavad-gītā

uddhared ātmanātmānaṁ nātmānam avasādayet
ātmaiva hy ātmano bandhur ātmaiva ripur ātmanaḥ

B.G. 6.5

One must deliver himself with the help of his mind, and not degrade himself. The mind is the friend of the conditioned soul and his enemy as well. For him who has conquered the mind, the mind is the best of friends; but for one who has failed to do so, his mind will remain the greatest enemy.

The fact is, it is not at all difficult to attain the Lord, if we can understand a simple thing as to not remain overtly attached to worldly relations and so called assets and possessions but, on the contrary attach our heart and mind to the Lord and His devotees. Śukadeva Gosvāmī says, in the 5th Canto of Śrīmad-Bhāgavatam

māgāra-dārātmaja-vitta-bandhuṣu
saṅgo yadi syād bhagavat-priyeṣu naḥ
yaḥ prāṇa-vṛttyā parituṣṭa ātmavān
siddhyaty adūrān na tathendriya-priyaḥ

Bh. 5.18.10.

My dear Lord, we pray that we may never feel attraction for the prison of family life, consisting of home, wife, children, friends, bank balance, relatives and so on. If we do have some attachment,let it be for devotees, whose only dear friend is Kṛṣṇa. A person who is actually self-realized and who has controlled his mind is perfectly satisfied with the bare necessities of life. He does not try to gratify his senses. Such a person quickly advances in Kṛṣṇa consciousness, whereas others, who are too attached to material things, find advancement very difficult.

Mahārāja Bharata was one such great personality. Not only, was he a very pious and righteous king but at the same time a realized soul and a devotee of Lord Sri Kṛṣṇa.

yo dustyajān dāra-sutān suhṛd rājyaṁ hṛdi-spṛśaḥ
jahau yuvaiva malavaduttamaśloka-lālasaḥ

Bh. 5.14.43.

While in the prime of life, the great Mahārāja Bharata gave up everything because he was fond of serving the Supreme Personality of Godhead, Uttamaśloka. He gave up his beautiful wife, nice children, great friends and an enormous empire. Although these things were very difficult to give up, Mahārāja Bharata was so exalted that he gave them up just as one gives up stool after evacuating. Such was the greatness of His Majesty. The path indicated by Mahārāja Bharata is like the path followed by Garuḍa, the carrier of the Lord, and ordinary kings are just like flies. Flies cannot follow the path of Garuḍa, and to date none of the great kings and victorious leaders could follow this path of devotional service, not even mentally. Lord Sri Kṛṣṇa says in Bhagavad-gītā

bhogaiśvarya-prasaktānāṁ tayāpahṛta-cetasām
vyavasāyātmikā buddhiḥ samādhau na vidhīyate

B.G. 2.44

In the minds of those who are too attached to sense enjoyment and material opulence, and who are bewildered by such things, the resolute determination for devotional service to the Supreme Lord does not take place.

As long as the material body exists, there are actions and reactions in the material modes. One has to learn tolerance in the face of dualities such as happiness and distress, or cold and warmth, and by tolerating such dualities become free from anxieties regarding gain and loss. This transcendental position is achieved in full Kṛṣṇa consciousness when one is fully dependent on the good will of Kṛṣṇa and surrenders ones life at the lotus feet of the all loving Lord and accepts Him and only Him as his Shelter–The Saviour. ■

To safe guard one's false ego is wrong.
It means we have not taken shelter of the Absolute Truth.
We have taken shelter of Maya.

H.H.Ramesh Babaji Maharaj

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥
(गी. ३.३३)

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥
(गी. ४.१७)

Our Nature and Karmo Ki Gati – 1

Vikram Ji
North carolina USA

Each one of us is born with a baggage of our own Karma that we have been carrying forward from our millions of past lives. Consider identical twins, who sometimes have very different nature from each other even though they supposedly share all of their DNA. Why does one twin get cancer while the other stays healthy? Our nature is shaped under the heavy weight of mountains of our Karmas. It is generally observed that person's nature does not change, even for those people who have been on the path of Krishna-Bhakti from past several years / decades. Then what to talk about of the people, who are engrossed in four common activities found in humans as well as animals – eating, sleeping, mating and defending. It is extremely difficult to understand the Karmo Ki Gati (The Laws of Karmas). Many a times, they perplex us and we can't understand it through logic or scientific explanation.

Matibul was returning from work on the morning of August 10, 2016 in Delhi and was hit by an auto-rickshaw. He bled to death for 90 minutes without receiving any help from anyone. One person, who came near him, fled with his mobile instead of providing any help to dying Matibul. The co-pilot Andreas Lubitz, of Germanwings flight 9525, crashes the airplane north-west of Nice, France on March 24, 2015 and all 144 passengers perish in the mountains of the French Alps. Why did Lubitz do it and what was the fault of 144 passengers? What was the fault of Matibul that he met such a tragic death and nobody came to take him to the hospital? What will be the fate of all those, who passed by the Matibul and saw him dying but did not provide any help? What will happen to that person, who took away his mobile instead of providing any help? These are all Karmo-Ki-Gati and no matter what sociological, mental and scientific explanation we try to put forward, it is very difficult to understand them or speculate as those are beyond the education that we get in our professional career. A person, who accumulated wealth through illegal means seems to enjoy full life in spite of having all vices in this life time whereas a poor woman, who remained pious throughout her life with strict observance of Eikadasis throughout her life suffered loss of husband in very early age and never got any happiness from her son. A mother having 9 children dies alone in her house without anyone remaining by her side in her last moments. What was her fault and did she deserve such a death with no-assistance from any of her children? Did that woman really deserve unhappiness in life even after observing all Eikadasis throughout her life? When we remain in our day-to-day life following the four common principles of eating, sleeping, mating and defending, we do not know what we are doing, where we are going or what we are chasing in life? Knowing our own nature and understanding Karmo-Ki-Gati is extremely difficult. Our current education system teaches us the laws of Physics, Sociology, Chemistry, Quantum Mechanics, Astronomy, Mathematics etc., but it has no curriculum to advance our knowledge for things that we seem to know naturally right from our birth that we had our past lives, we have our ancient religion – Sanatan Dharma and we all bear the consequences of our own Karmas. We all know these at a very high surface level without any deep understanding and knowledge. We, even, do not think about them as they are very low priority in our life. The utmost priority is to get a quality education preferably from a topmost institute or preferably from an American university; get married to a well-educated earning wife, get one son and daughter, possibly immigrate to a wealthy country like America, Canada, Australia or UK, get a nice modern car, get all comforts of life including a big house, 91-inch digital TV, go site-seeing, merry-making and party with friends and family. We go to temples when we need it. Most of the time, it is for asking something from that almighty God to bestow us with our long-list of demands and we, in-return, promise to do something for that almighty God as if He is lacking in His opulence. We may earn a six figure income but doling out a note of Rs. 500 seems like a mountain of

pious activity that we have done. We take a sankalp to do a Satya-Narayan Katha, if that God fulfills our desires. As a goodwill of gesture towards that God, we sometime get a room built in some Dharamshala, feed people who need food, giving bananas and legumes to monkeys, etc. When in trouble and on the advice caring friends and well-wishers, we run to Lord Shani Dev temple for getting rid of Shani-ki-sadhe-saati ill-effects. We, all, do these activities to feel good and think that we did something really good and then we go and talk about these to others to encourage them. We invite priests to our homes for pujas for well-being of family, good health, and most importantly for getting a well-paying job or business to get good wealth. We also buy lottery tickets with a promise of returning 10% to temple, if we win. We also go to Tirumala temple to make God our percentage partner in our business. This is all what our parents taught us and that is what we do in our lives and this chakra continues for life and we inculcate same sanskaars to our kids. When we started our life as a new born, we had our own personal unique nature and this never changes throughout the life. We had unique qualities to get angry, grab somebody's opportunity to advance in life, feeling very happy on our accomplishments, lamenting on our losses, feeling happy on someone else losses, boasting about how much donations we did to a charity or a temple, always craving for self-recognition, fighting for rights, doing best for the family, running again to temples for seeking protection by doing some anusthaan through priest for the things that were not in our control, and sometime defeating enemies by invoking mantras through a sorcerer. No matter how much religiosity and spirituality we may practice, our nature does not change and it remains the same. Our nature is not the making of one life time – it is the culmination of previous millions of lives that we had lived and our Karmas have shaped our nature and that is why the siblings of twins have very different nature. Can we change our nature? The answer is that it is next to virtually impossible. Many people may claim that they have successfully changed their nature but in fact it was the habits. Seeing a complete change in the nature of someone is like seeing a stone getting melt at room temperature and taking a different shape. It is not in the strength of an individual or will power to change their own nature through their own efforts. It won't happen no matter how hard we may try. Of course, impossible also says that I am possible and there is a solution – which is to learn in-depth the authentic principles and techniques of their implementation from someone who is a knower as well as practitioner of this subject. Didn't we learn our education from a system by spending many years and going through a curriculum but Alas! We can't find this course in our modern education system or even from topmost institutions. Only one out of thousands seeks to know this truth. But again, the Karmo ki Gati takes him to the level of Guru that he deserves based upon his own nature. In today's world of high speed dissemination of information, we are bombarded even in the field of spirituality with many spiritual paths beamed to our bedrooms through TV channels. How do we know which path will deliver us beyond this insurmountable bhav-saagar? Is there a thermometer to measure? Can that TV channel Guru deliver us from this material nature or maaya (one that does not exist)? What is the guarantee? How do we measure ourselves and the TV channel Guru? Will this happen in this life time or will we have to take many millions of more lives to get that awakening? There are no easy answers and even the guarantee that we will get what we are hankering for. What is the path? Why am I in this deep anxiety? Why my nature does not change even how hard I try? How do I know that Supreme Soul is bestowing His mercy upon me? Is it happiness, good wealth, happy family life or good health? Who can show me the mirror? Will I get trapped in the maya of TV channels? How do I know that one who professes to be a Guru is also the practitioner of his own teachings or not? Is there a difference between what he says and does in actual life? It is very difficult in this age to have these questions arise in anybody's mind. First – given the fact that we all work like donkeys from dawn to dusk for the stomach and let alone think about one's own nature and Karmo Ki Gati. Second – our conditioning in this world of constant struggle and suffering is so powerful that we cling to each other and live and die in same well. While living in that well, we have some degree of superficial knowledge that there exists a vast ocean outside our well but our family members always discourage us to get out of the well and to go near that ocean. They fear to lose us as who will take care of them. Just few out of thousands ventures out of the well but much to the chagrin of our family members, we get drowned in that unfathomable ocean. We become an example for others not to venture out to that vast ocean. Who is that Guru on whose ship we can ride and traverse this unfathomable ocean (bhav-saagar)? Who is that Guru, who can command us to tread on the right path on which he himself has taken his arduous journey and is a personified example – whose words go deep in the heart having a potential of changing one's nature, which is like melting a stone at room temperature.

(To be continued in next edition …)

पृष्ठ २५ का शेष अंश

अनन्तलीलाधारी भगवान् अनेक प्रकार से अपनी लीलाओं को सम्पन्न करते हैं, उसमें इदिमत्थं नहीं कह सकते –

'यस्यामतं मतं तस्य मतं यस्य न वेद सः ।'

(केनोपनिषद्)

अथवा

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता ।
गावहिं बहुविधि मिलि सब संता ।।
हरि अवतार हेतु जेहि होई ।
इदमित्थं कहि जाइ न सोई ।।
राम जन्म के हेतु अनेका ।
परम विचित्र एक तें एका ।।

जीव जगत पर अनुग्रह करने के लिए ही भगवान् अनेकविध दिव्यातिदिव्य रसमयी ललित लीलाओं का सम्पादन करते हैं जिनके श्रवण व गान से सहज ही चित्त निर्मल हो जाता है –

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ।।

(भा. १०.३३.३७)

भगवान् के सभी नाम, रूप, लीला, धाम, सर्वथा दिव्य हैं, चिन्मय हैं, अलौकिक हैं, अप्राकृत हैं –

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः ।
त्यक्तवा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोर्जुन ।।

(गी. ४.६)

अतः इनमें से किसी का भी आश्रय लेने से हृदय भगवत्प्रेम से पूरित हो जाता है और उन अनेकविध रसमयी लीलाओं में से जैसी जिन सन्तों के तपःभूत अन्तःकरण में अनुभूत होती हैं, वैसी ही वे सन्त वर्णन करते हैं –

जाकौ जैसी लखि परी तैसी गावै सोइ ।
बीथी भगवत मिलन की निश्चौ एक न होइ ।।
निश्चय एक न होइ कहैं सब प्रथक हमारी ।
श्रुति स्मृति भागौत साखि गीता दै भारी ।।
भूपति सबनि समान लखै, निज परजा ताकौ ।
जाकौ जैसो भाव सपोषै तैसो ताकौ ।।

जैसे राजप्रासाद की ओर जाने वाले भिन्न–भिन्न मार्गों को राजा समान रूप से देखता है एवं उन मार्गों से आने वाले आगन्तुकों से मिलकर उनके भावों का पोषण करता है, उसी प्रकार भगवान् भी समान रूप से सभी भक्तों के भावों का पोषण करते हुए उनको अनुभूत होते हैं।

अतः उन सभी सन्त महापुरुषों की अनुभूति के आधार पर निर्णीत व प्रणीत सिद्धान्त व वाणियाँ सर्वथा प्रामाणिक हैं, इसमें भेद भ्रम व संशय के लिए अवकाश ही कहाँ? इसलिए वृथा पाण्डित्य का प्रदर्शन न करते हुए लीला रस का ही आस्वादन करना चाहिए ।

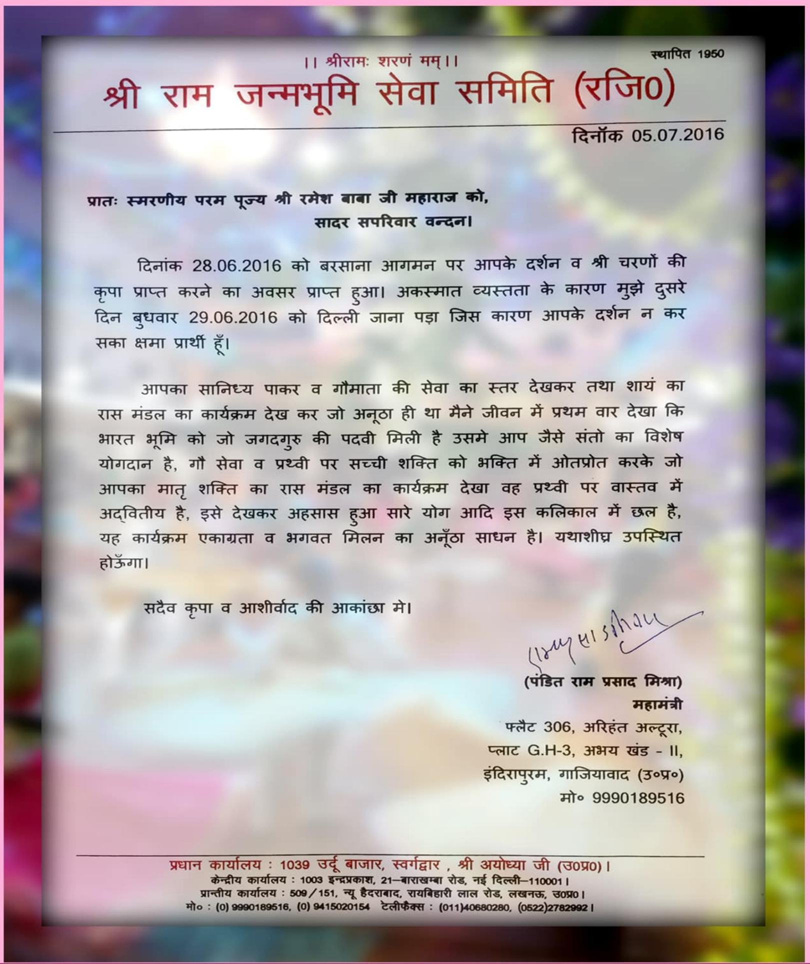

।। श्रीरामः शरणं मम्।। स्थापित 1950

श्री राम जन्मभूमि सेवा समिति (रजि0)

दिनॉक 05.07.2016

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य श्री रमेश बाबा जी महाराज को,
सादर सपरिवार वन्दन।

दिनांक 28.06.2016 को बरसाना आगमन पर आपके दर्शन व श्री चरणों की कृपा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। अकस्मात व्यस्तता के कारण मुझे दुसरे दिन बुधवार 29.06.2016 को दिल्ली जाना पड़ा जिस कारण आपके दर्शन न कर सका क्षमा प्रार्थी हूँ।

आपका सानिध्य पाकर व गौमाता की सेवा का स्तर देखकर तथा शायं का रास मंडल का कार्यक्रम देख कर जो अनूठा ही था मैने जीवन में प्रथम वार देखा कि भारत भूमि को जो जगदगुरु की पदवी मिली है उसमे आप जैसे संतो का विशेष योगदान है, गौ सेवा व प्रथ्वी पर सच्ची शक्ति को भक्ति में ओतप्रोत करके जो आपका मातृ शक्ति का रास मंडल का कार्यक्रम देखा वह प्रथ्वी पर वास्तव में अद्‌वितीय है, इसे देखकर अहसास हुआ सारे योग आदि इस कलिकाल में छल है, यह कार्यक्रम एकाग्रता व भगवत मिलन का अनूँठा साधन है। यथाशीघ्र उपस्थित होऊँगा।

सदैव कृपा व आशीर्वाद की आकांछा मे।

(पंडित राम प्रसाद मिश्रा)
महामंत्री
फ्लैट 306, अरिहंत अल्टूरा,
प्लाट G.H-3, अभय खंड - II,
इंदिरापुरम, गाजियावाद (उ०प्र०)
मो० 9990189516

प्रधान कार्यालय : 1039 उर्दू बाजार, स्वर्गद्वार , श्री अयोध्या जी (उ0प्र0)।
केन्द्रीय कार्यालय : 1003 इन्द्रप्रकाश, 21–बाराखम्बा रोड, नई दिल्ली–110001।
प्रान्तीय कार्यालय : 509/151, न्यू हैदराबाद, रायबिहारी लाल रोड, लखनऊ, उ0प्र0।
मो० : (0) 9990189516, (0) 9415020154 टेलीफैक्स : (011)40680280, (0522)2782992।

नित्य संध्या होने वाले महारास कार्यक्रम में ब्रज के पुरातन स्वरुप के समस्त परिधानों से युक्त मानमंदिर की सैकड़ों साध्वियाँ नित्य ऐसा नृत्य करती हैं जिसे देखकर लगता है मानो पाँच हजार वर्ष पुरानी गोपियाँ अपने प्रेष्ठ पुरुष श्रीकृष्ण को रिझा रही हों ।

इस रसोमय कार्यक्रम से नित्य हजारों दर्शनार्थी तो लाभान्वित होते ही हैं, इंटरनेट के माध्यम से देश–विदेश के नागरिक भी लाभान्वित होते हैं ।

इस रसमय महारास कार्यक्रम को देखकर श्रीरामजन्मभूमि सेवा समिति के महामंत्री जी ने पत्र के माध्यम से अपनी भावनायें व्यक्त कीं ।

प्रियाकुण्ड (बरसाना) में मानगढ़ के भक्तों द्वारा सेवा

नंदनंदन से प्रियाजी (श्री किशोरी जी) के विवाहोपरान्त पीतहस्त प्रक्षालन से स्वर्णिम कान्ति को प्राप्त जल के कारण जिसे 'पीली पोखर' कहते हैं; अथवा श्रीजी के स्नान, उबटन से जिस सरोवर का जल पीला हो गया था एवं 'पुरातन पीलू वृक्षों की बहुतायत से जो स्थल उक्त नाम से अलंकृत हुआ' बरसाना की एक दिव्य राधामाधव लीला स्थली है । यहाँ उनका नित्य आगमन होता और सखियों के साथ वे जलकेलि किया करतीं । आज भी अनेक संत अपनी आराध्या प्रिया जी को आराधन तत्पर हो लाड़–लड़ाया करते हैं । ऐसी दिव्य व पावन स्थली की पावनता धीरे–धीरे काल–प्रभाव से शनैः–शनैः नष्ट हो गई। यद्यपि प्रिया–प्रियतम की जलकेलि स्थली को अपावन कहना जघन्य अपराध है फिर हमारी स्थूल दृष्टि भला दिव्यालोक के दर्शन में कहाँ समर्थ है । भौतिक व बाह्यरूप भक्तजनों, भावुकों के हृदय में पीड़ा पहुँचाता रहता था परन्तु कतिपय लोगों के प्रयास भी हजारों वर्ष की गन्दगी हटाने और उसे निर्मल बनाने में असमर्थ हुए, तो राधारानी के गोस्वामियों ने मानमंदिर में श्रीमानबिहारी लाल के पाटोत्सव के अवसर पर प्रियाकुण्ड की सफाई का अनुरोध किया । श्रीजी की नित्य–लीलाओं में नित्य निमग्न पूज्य बाबा महाराज ने सहज में असम्भव से कार्य को सम्भव किये जाने की स्वीकृति दे दी । चूँकि ब्रजसेवा में जीवन समर्पित करने वाले बाबा महाराज का कोई सपना या संकल्प आज तक अधूरा नहीं रहा; प्रभु आश्रय लेकर अपने गुरुकुल के बालक–बालिकाओं तथा समस्त सन्तों को लेकर स्वयं भी सेवा–परायण हो गये । जल निकासी के साथ–साथ हजारों टन दुर्गन्धयुक्त कीचड़ को कड़े परिश्रम के पश्चात् बच्चों ने निकालकर प्रियाजी के प्रियाकुण्ड को फिर से प्रिय बना दिया । इस कार्य में यद्यपि दिन–रात के कठोर परिश्रम के साथ तीन माह लग गये थे । बालक–बालिकायें घायल हुए; अस्वस्थ हुए परन्तु लक्ष्य की पूर्ति से पूर्व कार्य से विरत नहीं हुए ।

लोग साधन करते हैं जिसमें जप, तप, ध्यान, धारणा, समाधि अथवा योग, मौन, व्रत, दानादि अनेक सत्कर्म हैं परन्तु न जाने कौन–से गुण पर दयानिधि रीझ जाते हैं । 'इन बालक–बालिकाओं को' लगता है ऐसी सेवाओं के कारण ही अखण्ड ब्रजवास के अलभ्य लाभ से लाभान्वित कर दिया श्री किशोरी जी ने । कैसे भी शास्त्रों में सेवा को सर्वोपरि कहा है क्योंकि 'सेवा' जीव को निरहं बनाती है । अहंता के साथ किया बड़े–से–बड़ा साधन भी भगवान् को स्वीकार्य नहीं है ।

काहू के बल भजन को, काहू के आचार ।
व्यास भरोसे कुँवरि के, सोवत पाँव पसार ।।

अनेकानेक सेवाओं में संलग्न मानमंदिर के बालक–बालिकायें व संतजन निर्द्वन्द्वता से अपनी किशोरी जी की अन्तरंग लीलाओं की स्थली गहवरवन में उन्हीं की कृपा स्वरूप सहज सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

प्रिया जू के इस पवित्रतम सरोवर को पहली बार उनके लीलाकाल के बाद स्वच्छ किया गया ।

वृन्दावनमहिमामृतम् में लिखा है –

दूरे चैतन्यचरणाः कलिराविरभून्महान् ।
कृष्णप्रेमा कथं प्राप्यो विना वृन्दावने रतिम् ।।

ऐसे आचार्य तो चले गये जिनकी वायु से ही भगवत्प्रेम की प्राप्ति होती थी । न महाप्रभु चैतन्य जी रहे, न हरिवंश जी महाराज रहे, न स्वामी हरिदास जी रहे, न गोसाईं विट्ठलनाथ जी रहे, तो कृष्ण प्रेम की प्राप्ति कैसे हो ?

इसका उत्तर ग्रन्थकार देते हैं – ब्रज–वृन्दावन की रज का आश्रय कर लो, धाम का आश्रय कर लो, तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा । अस्तु धाम सेवा करने वाले को निश्चित ही धामी की कृपा मिलेगी ।

श्री मानमंदिर सेवा संस्थान से संचालित 'श्री राधारानी वार्षिक ब्रजयात्रा' जिसमें १५,००० से अधिक भक्तगण ४० दिन तक अखण्ड भगवन्नाम–संकीर्तन के साथ लीला–स्थलियों के दर्शन व माहात्म्य श्रवण करते हुए पदयात्रा करते हैं । यात्रा पूर्णतः निःशुल्क है । आगामी यात्रा १४ अक्टूबर २०१६ से प्रारम्भ होगी ।

दिनाँक	दिन	तिथि	पड़ाव	दर्शनीय स्थल
14.10.2016	शुक्रवार	त्रयोदशी	बरसाना	संकल्प प्रातः (यात्रा पाण्डाल), मानगढ़, दानगढ़, मयूर कुटी, सांकरी खोर, विलासगढ़, महेश्वरी सर, दोहनी कुण्ड, पड़ाव ।
15.10.2016	शनिवार	चतुर्दशी	बरसाना	व्याहुला, देह कुण्ड, ललिता अटा, ऊँचागाँव, दाऊजी दर्शन, सोनोखर, भानोखर, ब्रजेश्वर महादेव, रावडवन, पाडर वन, चित्रासखी, पड़ाव ।
16.10.2016	रविवार	पूर्णिमा	नंदगाँव	पीली पोखर, अलि किशोरी, राधा गोविन्द, प्रेम सरोवर, संकेत, दोमिल वन, उद्धव क्यारी, हाउ विलाऊ, खूँटा, नन्दभवन ।
17.10.2016	सोमवार	प्रतिपदा, द्वितीया	नंदगाँव	परिक्रमा व दर्शन – पावन सरोवर, मोती कुण्ड, आसेश्वर महादेव, टेर कदम्ब, कृष्णकुण्ड, यशोदाकुण्ड, नंदखिरक, चरण पहाड़ी, पनिहारी कुण्ड।
18.10.2016	मंगलवार	तृतीया	सतवास	वृन्दा देवी, लौहरवारी, भड़ौखर, महराना, कनबाड़ी, सतवास ।
19.10.2016	बुद्धवार	चतुर्थी	घड़ी	ऐंचवाड़ा, पथवारी, कलावटा, नोंनेहरा, घड़ी ।
20.10.2016	गुरूवार	पंचमी	आलीब्राह्मण	बिछोर, इन्धाना, अन्धोप, आली ब्राह्मण ।
21.10.2016	शुक्रवार	षष्ठी	बनचारी	नागल जाट, सौंध, सौंध गाँव, बनचारी ।
22.10.2016	शनिवार	सप्तमी	लीखी	डकौरा, महरौली, खाम्बी, लीखी ।
23.10.2016	रविवार	अष्टमी	यमुना जी	हसनपुर, यमुना जी ।
24.10.2016	सोमवार	नवमी	जैदपुरा	मारव, जैदपुरा ।
25.10.2016	मंगलवार	दशमी	बाजना	मानागढ़ी, बाघई, भूतगढ़ी, बाजना ।
26.10.2016	बुद्धवार	एकादशी	पिथौरा	पारसौली, सलाका, बरौठ, पिथौरा ।
27.10.2016	गुरूवार	द्वादशी	टैंटी गाँव	मीरपुर, सुल्तानपुर, सप्तर्षि, सुरीर, टैंटी, नगला भूपसिंह ।
28.10.2016	शुक्रवार	त्रयोदशी	मांट	रामनगर, बिजौली, छाहरी, वंशीवट, भांडीरवन, मांट ।
29.10.2016	शनिवार	चतुर्दशी	वृन्दावन	बेगमपुर, जहाँगीरपुर, बेलवन, वृन्दावन ।
30.10.2016	रविवार	अमावश्या	वृन्दावन	वृंदावन परिक्रमा ।
31.10.2016	सोमवार	गोवर्धनपूजा	वृन्दावन	मन्दिर दर्शन ।
01.11.2016	मंगलवार	द्वितीया	जावरा	पानीगाँव, राधारानी मानसरोवर, आसा ही घड़ी, जावरा ।
02.11.2016	बुद्धवार	तृतीया	धरणीधर	जैसवा, बकला, नीमगाँव, शेरनी, दाऊ जी प्राचीन मंदिर, किला, वेसवाँ ।
03.11.2016	गुरूवार	चतुर्थी	सौनई	नयावास, काला आम, घड़ीपिथौर, भगु, चुहैरा, सौनई ।
04.11.2016	शुक्रवार	चतुर्थी	सौंखखेड़ा	गुड़ेरा, नगौडा, गुर्ज, अरजुनिया, सौंखखेड़ा ।
05.11.2016	शनिवार	पंचमी	दाऊजी	पचावर, अवैरनी, दाऊ जी मंदिर ।
06.11.2016	रविवार	षष्ठी	चिन्ताहरण	खंडौरा, बसई, हरदसा, ऋणमोचन, चिन्ताहरण ।
07.11.2016	सोमवार	सप्तमी	बाद	ब्रह्माण्ड घाट, महावन चौरासी खंभ, रमण रेती, रसखान समाधी, गोप तलैया, गोकुल, वैराज, बालाजी मंदिर, कोयले घाट, बाद ।
08.11.2016	मंगलवार	अष्टमी	सोनोंठ	हिताश्रम, भैंसा, छरगाँव, शेरसा, माल (मार्कंडेयवन व ऋषीमंदिर), सोनोंठ।
09.11.2016	बुद्धवार	नवमी	सौंख	गोपालपुर, जाजमपट्टी, मगौरा, फौडर, लोरिहा पट्टी, सौंख ।
10.11.2016	गुरूवार	दशमी	पूछरी	बजार, बछगाँव, कौथरा, पूछरी ।
11.11.2016	शुक्रवार	एकादशी	पूछरी	गोवर्द्धन परिक्रमा ।
12.11.2016	शनिवार	द्वादशी	कुचावटी	श्याम ढाक, सामई, ऊमरा, अऊ, कुचावटी ।
13.11.2016	रविवार	त्रयोदशी	टांकौली	डीग, दुदावली, टांकौली ।
14.11.2016	सोमवार	चतुर्दशी	खोह	गुहाना, बूढ़ेबद्री, जड़खोर, पहलबाड़ा, खोह ।
15.11.2016	मंगलवार	प्रतिपदा	आदिवद्री	नील घाटी, कदमखण्डी, अलीपुर, हरिनखोई, देव सरोवर, गंगोत्री, यमुनोत्री, हरिद्वार, हर की पौड़ी, आदिबद्री ।
16.11.2016	बुद्धवार	द्वितीया	केदारनाथ	अलीपुर, पसोपा, धाऊ बरौली, केदारनाथ ।
17.11.2016	गुरूवार	तृतीया	कामा	लौहसर, चरण पहाड़ी, लुक–लुक कुण्ड, गया कुण्ड ।
18.11.2016	शुक्रवार	चतुर्थी	कामा	परिक्रमा दर्शन – सेतुबन्ध, रामेश्वर, लंका, चौरासीखम्बा, वृन्दादेवी, गोविन्दजी, श्रीकुण्ड खिसलनीशिला, गुफा, भोजनथाली, मदनमोहनजी ।
19.11.2016	शनिवार	पञ्चमी,षष्ठी	बरसाना	कनवाडा, कदमखंडी, सुनहरा, बरसाना, मानमंदिर ।

कन्हैया राधा रानी कौ भयो बिना मोल कौ चेरो ।।
राधा राधा रटतो डोलै
राधा गावै राधा बोलै
बंशी में गावै राधा को, भयो बिना मोल....... ।
राधा नाम लिखे सब अंगन
राधा नाम गढ्यो सब गहनन
पीताम्बर रंग राधा को, भयो बिना मोल....... ।
मोर मुकुट में राधे राधे
कानन कुण्डल राधे राधे
तिलक नाम राधा को, भयो बिना मोल....... ।
हार गरे में राधे राधे
कठुला कंगन राधे राधे
गूंठी में नाम राधा को, भयो बिना मोल....... ।
कमर किंकिणी राधे राधे
घुँघरू बोलैं राधे राधे
नाँचौं लै नाम राधा को, भयो बिना मोल....... ।।

Shri Radha Rani Braj Yatra

The Biggest Annual Braj Seema Parikrama

Totally FREE of cost

राधा कौ बरसानौ

श्री राधारानी मंदिर

मोर कुटी

साँकरी खोर

विलासगढ़

व्रजेश्वर महादेव

प्रिया कुण्ड (पीली पोखर)

वृषभानु सरोवर

MAAN MANDIR
SEVA SANSTHAN TRUST
Gahvarvan, Barsana, (Mathura)

Website : www.maanmandir.org
E-mail : ms@maanmandir.org, magazine@maanmandir.org
Tel. : +91-9927338666, 9837679558, 9927194000, 7451043271